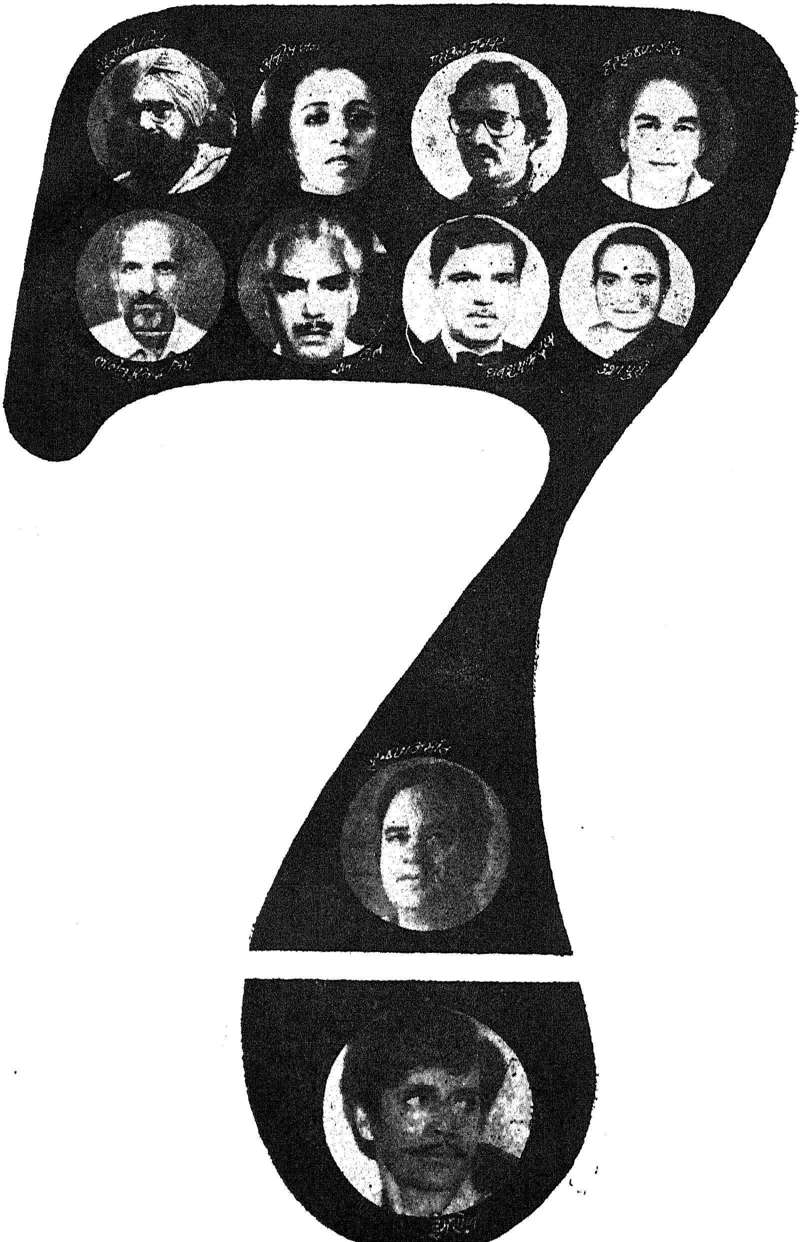
सात सवाल

7

अमृता प्रीतम



सख्त सवाल

प्रकाशक :
किताब घर,
मेन रोड, गांधीनगर, दिल्ली-110031

संस्करण : 1986

मूल्य : पैंतीस रुपये

मुद्रक : शर्मा फाईन आर्ट्स (ऑफसैट प्रिंटर्स)
गांधी नगर, दिल्ली-110031

WAL in Hindi
a Pritam
: Rs. 35.00

यह पुस्तक डाक्टर लक्ष्मी मल सिंघवी के नाम अर्पित करती हूं
जिन्होंने स्वयं से सवाल किया और स्वयं से जवाब पाया.

"मैं कवि नहीं, मनुज का मन हूं, सहज हृदय का संवेदन हूं…
जिये हुए अनुभव का क्षण हूं, मैं क्षण की शाश्वत धड़कन हूं…"

—अमृता प्रीतम

क्रम

?

हर

चित्रकार हरकृष्ण लाल से सात सवाल

: हरकृष्ण जी ! यह एक तवारीखी घटना है कि लुधियाने जैसे छोटे से शहर के तीन बच्चे, तीन दोस्त, बड़े होकर हिन्दुस्तान के तीन मशहूर कलाकार बने। आप एक चित्रकार, साहिर लोगों का महबूब शायर, और जयदेव फिल्मों का संगीत निर्देशक। आप तीनोंका चुनाव---तीन हुनर, आप काअपना फैसला था या आसमान के सितारों का ?

: हम तीनों के सामने और भी रास्ते थे। रोजगार का चुनाव हमारे, या हमारे घर के लोगों के अख्तियार में होता, तो हम तीनों जरूर और रास्तों पर पड़ जाते। मुझे यकीन है कि हम तीनों के रास्तों का फैसला आसमान के सितारों ने किया था।

जयदेव अच्छा भला स्कूल में पढ़ रहा था, न जाने क्या बनने के लिए, पर शहर में देवा राम नाम का एक आदमी था, जिसने एक सिनेमा घर बनाया। यह शहर का पहला सिनेमा घर था। जिसके जश्न के लिए वह एक फिल्म अभिनेत्री को बम्बई से बुला लाया। उसका नाम असंलीन था। हमारे जयदेव को संगीत का शौक था, पर उस शौक की दीवानगी का उसे पता नहीं था। असंलीन के सामने जब उसने कुछ गा कर सुनाया, उसकी आंखों में अपने संगीत की न जाने कैसी-सी दाद देख ली, कि घर घाट छोड़कर असंलीन के साथ ही बम्बई चला गया। बहुत थोड़े लोग जानते हैं कि वह शुरू में वाडिया मूवीटोन की कई स्टंट फिल्मों में कामेडियन का काम करता रहा था···

साहिर जब कालिज में दाखिल हुआ था तो अपने फार्म पर उसने अख्तियार करने वाले पेशे का नाम वकालत लिखा था। शायद इसलिए कि उसके बाप से अलग हुई उसकी मां ने, और उसके अपने बचपन ने सिर्फ कचहरियों के मुंह ही देखे थे। और उसने सोचा होगा कि हकशफा के 12 मुकदमों को भुगतते हुए, वह शायद जिन्दगी में वकील बनकर ही जिन्दगी का मुकदमा जीत सकेगा। तब वह नहीं जानता था कि पूरे मुल्क के लोगों का दिल वह अपनी शायरी से जीतेगा। तबीयत अहसासमंद थी कालिज के मैगजीन के

लिए जब उसने पहली गजल लिखी "मैं चांदनी रात में दिल थाम के गाऊंगा" —तो फिर वह तमाम उम्र गाता रहा और लोग दिल थाम कर सुनते रहे···

और मैं ? मैंने कालिज में फिज़िक्स, कैमिस्ट्री और मैथमैटिक्स लिये थे। कालिज के फार्म पर अख्तियार करने वाले पेशे का नाम इंजीनियरिंग लिखा था। लेकिन दो बरस में महसूस किया कि मुझसे तमाम उम्र फिजिक्स के फार्मूले इस्तेमाल नहीं किए जाएंगे। और मैंने वह सब्जैक्ट्स बदल कर हिस्टरी और पोलिटिकल साइंस ले लिए। लेकिन मनचाहे दो ही शौक थे—कागजों पर तस्वीरें बनाना, और बॉसुरी बजाना। कालिज छोड़ने के बाद व्यवसाय का चुनाव करना था, जी करता था बांसुरी बजाने को, लेकिन सोचा उसके लिए सामने बैठे हुए श्रोताओं की आवश्यकता होगी। मेरी तबीयत बहिर्मुखी नहीं है, बिलकुल अंतर्मुखी है। इसलिए चित्रकला चुनी कि उसके सृजन के समय मुझे किसी की मौजूदगी की जरूरत नहीं होगी।

मेरे बाप ने अपना मन मार कर मुझे जे० जे० स्कूल आफ आर्टस में भेज दिया, लेकिन 1942 में जब "भारत छोड़ो आन्दोलन" के समय हर जगह हड़ताल हो गई, तो मैं कोई एक बरस तक खाली लाहौर में रहता रहा। बाप नाराज थे, इसलिए घर से रुपये मिलने बंद हो गए थे। मैं लाहौर रेडियो से बांसुरी बजाकर रोटी के लायक पैसे कमाता रहा। लेकिन जब स्ट्राइक खुल गई, मुझे वापस बम्बई जाना था तो फीस की रकम न होने की वजह से लगा कि मुझे अपना रास्ता बदलना पड़ेगा। उस वक्त मेरे सितारों ने फैसला कर दिया कि मैं बम्बई जाऊंगा। वहां मेरा एक दोस्त त्रिलोक होता था, जो संजोग से एक दिन लाहौर में मिल गया, उसने कहा कि उसकी तनखाह 90 रुपये से 120 रुपये हो गई है, और मैं बम्बई जा कर उसके कमरे में रह सकता हूं। मेरे खाने का सवाल भी उसने हल कर दिया था कि अगर हम दोनों होटल में जाकर खाना खाएंगे तो दुगने पैसे लगेगें, वह होटल से खाने का एक थाल घर मंगवा लिया करेगा, जिसे हम दोनों बांट कर खा सकेगें।

? : आप तीनों ने जिन्दगी भर क्वांरे रहने का फैसला भी एक जैसा कैसे किया ?

हर : यह फैसला भी हमारे सितारों ने किया था। हम तीनों ने आबाद घरों के सपने देखे थे। हमारे दिलों में मुहब्बत के अहसास जब उरुज पर आए, तो मुहब्बत की दीवानगी हमारा हासिल बन गई। किसी लड़की के मां बाप को यह यकीन नहीं बंधता था कि एक कलाकार उनकी बेटी को रोटी खिला सकेगा। खुद कलाकार को भी दो जून खाने का यकीन नहीं होता। सो, सीनों में सुलगाए मुहब्बत के अहसास, जयदेव के सुरों में ढल गए, साहिर की नजमों में, और मेरे रंगों में।

जयदेव ट्यूशनें करके गुजारा किया करता था, और उसकी मुहब्बत ने

जिसके लिए गहरे सांस लिये थे, उस लड़की का नाम जीतो था। जीतो के लिए उसके खत मैं लिखा करता था, कि अगर कल को यह खत जीतो के बाप के हाथ में पड़ जाए, तो वह जयदेव के हाथ की लिखत न हो…

साहिर की पहली मुहब्बत उसके कालिज की एक हसीना से थी। एक सिख लड़की से। रास्ते में मजहब की बहुत बड़ी दीवार थी। यहां तक कि कालिज के प्रिन्सिपल ने साहिर को आगाह किया था कि शहर में यह अफवाह इस तरह फैल रही है कि हिन्दू मुस्लिम फसाद का खतरा पैदा हो रहा है। इसके अलावा आर्थिकता का भी बहुत बड़ा मसला था। उस लड़की ने अलौकिक साहस किया, मां बाप का घर त्याग कर, साहिर से मिलने आई, और कहा 'जहां चाहो ले चलो।'—और उस वक्त साहिर ने यह तल्ख हकीकत देखी कि इस लड़की को आखिर मैं कहां ले जा सकता हूं? किस घर में रखूंगा? रोटी कहां से खिलाऊंगा?

और मेरा आबाद घर का सपना जिस लड़की का मुंह देखकर बना था. उसके मां बाप का आग्रह था कि मैं कोई सरकारी नौकरी कर लूं। लेकिन मैं जब गवर्नमेंट कालिज के बाद, बम्बई आर्ट स्कूल में चला गया, तो उनके लिए यह सोचना शायद वाजिब ही था कि दरवाजे खिड़कियां रंग कर, या किसी गली के एक कोने में बैठकर दुकानों के फट्टों पर दूकानों के नाम लिखने वाला उनकी बेटी को रोटी नहीं खिला सकेगा।

सो हम तीनों के जिन्दगी भर क्वांरे रहने का फैसला सितारों ने किया, या, अनाज के दानों ने, एक ही बात है। लेकिन यह फैसला हम तीनों ने नहीं किया था।

? : पर जब अनाज के दानों ने सारे फैसले आप तीनों के हक में दे दिये? आप हिन्दुस्तान के एक मशहूर चित्रकार बने, दिल्ली, बम्बई, कलकत्ते और दूसरे कई शहरों में आपकी नुमाइशें होने लगीं, सिर्फ अपने देश में नहीं, इंग्लैंड, फ्रान्स, जर्मनी, चीन, जापान, और कई बाहरी देशों में भी। और साहिर भी फिल्म इंडस्ट्री का सबसे अमीर गीतकार बन गया और जयदेव भी माने हुए म्यूजिक डायरेक्टरों में एक गिना जाने लगा, तब?

हर : बात यह है कि तब भी हमारे तीनों के क्वांरे रहने का फैसला अनाज के दानों ने ही किया। पहले अपनी कमी से किया था, फिर अपनी बहुलता से…जब शोहरत और पैसा हमारे पास आकर इकट्ठे हुए, तो उस वक्त नाजनीनों की जो भीड़ हमारे इर्द-गिर्द इकट्ठी होती रही, वह अनाज के दानों का जमा खर्च सोच कर आई हुई भीड़ थी। हमारी शोहरत को अपनी शोहरत का साधन बनाने वाली भी कई मिलीं। पर जब तक कलाकारों को यह पहचान हो जाती है कि यह कशिश न हमारे दिलों की खातिर है, न हुनर की पहचान के कारण आई है…

? : हरकिशन जी ! आपकी कैनवस के रंगों और रेखाओं में से निकल कर कभी कोई पराशक्ति कोई अलग आकार धारण करके भी आपके सम्मुख हुई है ?

हर : आज से छः वर्ष पहले मुझ पर एक ऐसी हालत तारी हो गई थी कि जहां भी नजर पड़ती थी, वहीं गणेश की सूरत आती थी, वह चाहे पेड़ों की शाखाएं ही क्यों न हों···सड़कों पर रखी हुई पूजा की मूर्तियों में से भी गणेश जैसे उठ कर सामने आकर खड़ा हो जाता···मैं धार्मिक भावनाओं वाला इन्सान नहीं हूं, पर जब यह गणपति था, जो मेरी हर खाली कैनवस पर जबर्दस्ती आ बैठता था···

तभी एक रात ऐसी आई जब यह गणेश हर कैनवस में निकल कर सड़क पर भी आ गया और मेरे सामने मंदिर बनाकर भी बैठ गया। मेरा सपना कितने ही हाथियों और मंदिरों से भर गया। देखा कि एक सड़क सी जगह के किनारे मैं खड़ा हूं। कुछ और लोग भी खड़े हैं, और सामने देखता हूं कि हाथियों का एक जलूस आ रहा है। सबके आगे एक जवान हाथी नाचता हुआ आ रहा है। इतना सजाया हुआ कि चांदी की झूल जैसे उसके शरीर पर पड़ी हुई न हो, चांदी की चित्रकारी उसकी खाल पर की हुई हो। वह अपनी सूंड से दोनों किनारों पर उगे हुए फूल तोड़कर रास्ते पर बिछाता रहा।···मेरे पास खड़े हुए किसी आदमी ने कहा "अपने मंदिर का हाथी कितना खूबसूरत है।" और देखता हूं कि नदी के घाट से उछल कर पानी एक मैदान में भर गया है, लकड़ी के छोटे-छोटे मंदिर बने हुए हैं। वह हाथी अपनी सूंड से एक मंदिर का घंटा बजाता है—और मैं लकड़ियों और बांसों के बने हुए उस मंदिर की ओर दौड़ता हूं···

? : पराशक्ति का यह तजुर्बा सिर्फ एक बार हुआ ?

हर : इस तरह किसी शक्ति का साकार रूप सिर्फ एक बार देखा था, पर निराकार रूप में हमेशा देखता हूं। हर बार कैनवस के आगे बैठता हूं तो लगता है कि कोई शक्ति मुझे माध्यम बनाकर कैनवस पर चित्र बना रही है। यह अहसास कोई ढाई या तीन घंटे रहता है। उसके बाद "मैं" का अहसास होता है, एक चेतन अहसास कि यह तो मैं हूं, मेरे हाथ हैं·· उस वक्त मैं कैनवस को वहीं छोड़कर काफी बीअर पीने के लिए घर के बाहर चला जाता हूं।

यह अहसास पिछले छः साल से है। लगता है जो इल्म इस क्षेत्र में पहचान की हद में शामिल हो चुका है, वह तो मैं जब चाहूं कैनवस पर उतार सकता हूं। पर जो उसके आगे है—पहचान की हद से बाहर, उसे चित्रित करने के लिए मुझे किसी अदृश्य शक्ति का हुक्मनामा चाहिए। यह उस अदृश्य शक्ति की मर्जी है कि जब चाहे मुझे अपने किसी मकसद का साधन बना ले, पर मैं अपनी मर्जी से इस कला का माध्यम नहीं बन सकता···

? : कल्पना की उर्वरता और बंजरता के दिनों फलों की कोई बात करेंगे ?

हर : मेरा वन ट्रैक माइंड है। उर्वरता के दिनों में लगता है जैसे कि मेरे अंदर कोई फिल्म चल रही है, जो बाहर दीवारों मेजों पर, पेड़ों पर, या कहीं भी प्रोजेक्ट हो रही है। यहां तक कि उन दिनों में सपने भी अजीब रंगों से भर जाते हैं। वही तो कुछ अंदर से एक प्रवाह में बाहर आता है, मैं उसे ही हर कैनवस पर उतार लेता हूं। पता नहीं लगता कि मैं कौन सी शक्ति का कातिब हूं···यह प्रवाह दिन में कई घंटे चलता है और कई महीने रहता है। हर कैनवस पर रंगों का एक मौसम आ जाता है।

और फिर जब कई महीने बाद मन की यह कैफियत आखरी सांस से भरने लगती है, भीतर-बाहर एक वीरानगी छा जाती है। इतनी कि लगने लगता है कि अब कभी कल्पना की पतझड़ पर बहार का मौसम नहीं आएगा··· कल्पना के पेड़ से हर पत्ता झड़ जाता है। तब मुझे एक खौफ आता है कि अब सूखे पेड़ों पर बौर नहीं आएगा चाहे चेतन तौर पर अपने आप को तसल्ली देता हूं कि पहले भी इस तरह कई बार हो चुका है, और यह वीरानगी भी आखिरी वीरानगी नहीं रहेगी···लेकिन एक बार तो सूखे से मारी हुई धरती की तरह मैं तरेड़-तरेड़ हो जाता हूं···

? : हमारे शास्त्रों ने सात पाताल माने हैं—अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल, और सातवां धुर नीचे पाताल। मेरा खयाल है कि हर सवाल और हर जवाब मन के पातालों में उतरने का एक प्रयत्न कहा जा सकता है। पर कोई फ्रायड या जुंग अभी तक इन्सानी मन के सातवें पाताल में उतर नहीं सका। हो सकता है कि इन्सान का ''स्वयं'' जब खुद को फ्रायड या जुंग बन जाए, तो शायद सातवें पाताल की कोई थाह लग सकती है। इसलिए चाहूंगी कि सातवां सवाल आप के अन्दर के सातवें पाताल से उठे, और अपना जवाब खुद उस पाताल से खोज कर लाए।

हर : मन के सातवें पाताल में से एक सवाल उठता है कि इस हुनर की खातिर मैंने जिन्दगी की हर जरूरत को और हर सुख को हाथों से झटक दिया, रास्ते में कई मुकाम आए जब हरियाली पगडंडियों ने आवाज दी, लेकिन मैंने उनकी तरफ नजर भर कर नहीं देखा। कला का एकमात्र रास्ता था जिस पर चलता गया। लेकिन वही हुनर, वही कला अब मेरे लिए एक ऐसी दरो दीवार बन गई है जिसमें बाहर की तरफ खुलने वाला कोई दरवाजा नहीं है···मुझे अपने ही हुनर के कारण जिंदगी एक बंदीखाना महसूस होने लगी है···

साथ ही अचेत मन का जवाब भी मिलता है कि जो हुनर मेरा बंदीवान है, वही मेरा बंदी छोड़ है। यह जो भी कुछ मेरे तन मन की गुलामी बन गई है यही मेरी मुक्ति है···

खुशवंत सिंह से सात सवाल

? : खुशवंत जी, सारी जिंदगी आपका संबंध सरमायेदार श्रेणी से रहा है, पर उस श्रेणी का गुरूर आपको छू नहीं सका। सारी जिंदगी आपने एक मजहब की नुमाइंदगी की है पर मजहब की कट्टरता आपको छू नहीं सकी। और सियातसदानों की निकटता आप की निश्छलता को नहीं छू सकी। इस "अछूते खुशवंत" का बल किस जगह पर है ?

खु : अमीर खानदान का हूं, पर कई रिश्तेदार बड़ी गुरबत में भी देखे। इस मुल्क में कौन है जो गुरबत की भयानकता को आंखों से ओझल कर सके। मां बाप का दिया हुआ कभी तसल्ली नहीं बन सकता। यह जरूर हुआ कि भरे पूरे घर का होने के कारण, मुझे पैसे की न कभी कमी हुई और न कभी उसकी कदर हुई। हमारे करीबी दोस्तों में दो-तीन खानदान ऐसे थे जो हम से कई गुना अमीर थे, मसलन सर श्री का राम, साराभाई का··· पर यह कभी रश्क नहीं आया कि उनके पास हमसे बड़ी मोटरें हैं, या और बहुत कुछ है जो हमसे बहुत ज्यादा है। कहानियां लिखने के लिए पहली जरूरी बात थी कि मेरा ताल्लुक बहुत साधारण और आम लोगों से हो, मैं उनकी जरूरतें जान सकूं। साधारण मजदूर, या निम्न मध्य श्रेणी के लोग—मेरे ध्यान का मर्कज बने रहे।

मैं भीतर से बिलकुल नास्तिक हूं। किसी मजहब के लिए मेरे अंदर कोई लगाव नहीं है। पर सिक्ख घर में पैदा हुआ हूं, इसलिए उसके साथ अपनत्व का अहसास स्वाभाविक तौर पर आया। मैंने रस्मिया तौर पर कभी पाठ नहीं किया, कभी गुरुद्वारे नहीं गया। पर दाढ़ी केस रखे, क्योंकि चाहता था कि मैं सिक्ख कौम से जुड़ा रहूं। सम्मान भी उन्हीं से चाहता था। अहसास होता था—"इन्हीं की कृपा से सजे हैं हम"···नहीं तो मेरे जैसे गरीब करोड़ों हैं। और मजहबों से नफरत का सवाल ही पैदा नहीं होता। बचपन में मुसलमानों से कुछ नफरत सिखाई गई थी, वही बल्कि उलटे मुझे उनकी मुहब्बत के लिए कुछ असंतुलित कर गई···

रह गए सियासतदान, उनसे मुझे असली नफरत है। जितने मिले हैं, सब झूठे मक्कार और खुद गरज···"दांते" ने जैसे लिखा था—जहन्नुम की कई तहें

होती हैं, उन सब तहों में मैंने सियासतदान देखे हैं। सातों दोजख उहोंने ही भरे हुए हैं, हथिया हुए हैं। जब मैंने यह सब देख लिया, फिर उनका असर कैसे हो सकता था···

बचपन से शेक्सपीयर की एक पंक्ति मेरे साथ लगी रही—"दिस एबव आल टु टाइन ओन बी टू, ऐंड इट शैल फालो ऐज दि नाइट द डे, ऐंड देन दाऊ शैल्ट नाट बी फाल्स टु ऐनी मैन"—इसलिए कह सकता हूं कि इस अछूते रह गए खुशवंत का बल उसके अंदर के लेखक में है। मैंने हमेशा शीशे में अपनी सूरत देखनी चाही है, वह सूरत जिससे मुझे कभी शर्मिंदगी न हो···

? : दौलत और शोहरत हमेशा आपको आगे बढ़कर मिली है, लेकिन किसी ऐसी घड़ी की बात बताइये जब किसी की मुहब्बत के लिए, या किसी और की प्राप्ति के लिए आपने जाना हो कि आरजू क्या होती है?

खु : अमृता, मैं नहीं मानता कि शोहरत मुझे आगे बढ़कर मिली है, दौलत जरूर मिली है। पर शोहरत के बारे में वह भी वक्त था जब वकालत मुझसे नहीं हो सकी थी। डिप्लोमैटिक सर्विस से मैंने इस्तीफा दे दिया था। तब लोग मुझ पर हंसते थे कि यह लेखक बनना चाहता है, इम्तहान तो इससे पास नहीं होते, अब किताबें लिखेगा। खासकर रिश्तेदारों के मजाक सुईयों की तरह चुभते रहे···

तुमने खुद किताबें लिखी है, तुम जानती हो कि किताब लिखने में, छपने में और लोगों के पास पहुंचने तक, कितने बरस लगते हैं। मेरी किताब छप जाती, तब मैं लोगों से छिपता फिरा करता था कि वह कोई चुभने वाली बात न कर दें··· फिर अब छोटी-मोटी शोहरत मिली है, तो उलटा असर हुआ है, मैं अब पहचाने जाने से छिपता फिरता हूं···

कई बार ऐसा हुआ है कि जब मन में किसी के लिए मुहब्बत आई, तो मैं खुद ही डर कर पीछे हो गया कि उस दूसरे का इन्कार मुझे न जाने कहां से तोड़ जाएगा। यह मेरा जख्म खाने से परहेज था। तो यही बात आखिर में मेरा स्वभाव बन गई···

आरजू मस्त हाथी की तरह थी, पर मैं खुद ही उसका अंकुश बन गया। हमेशा बना रहा हूं···

? : आपकी पत्रकारिता के मज़ाहिया अंदाज ने आपको लाखों पाठक दिए हैं, पर आपकी कलम खोफनाक हद तक बेखौफ भी है, क्या इस पहलू ने आपको कुछ खतरनाक दुश्मन नहीं दिए?

खु : बहुत दिये हैं अमृता। शायद तुम नहीं जानतीं कि इस वक्त भी मुझ पर कितने मुकदमे चले हुए हैं। हिन्दुस्तान का कोई सूबा नहीं है, जहां कचहरी में मेरी पेशी नहीं हुई।

श्रीनगर के कश्मीरी सिक्खों ने मेरे खिलाफ वारंट निकलवाए। आर० एस० एस० ने कोल्हापुर में भी, और दूसरे कई प्रान्तों में भी मुकदमे किए। प्रेस

काउन्सिल में जिन लोगों ने मेरे खिलाफ शिकायतें दर्ज करवाई हैं, उनमें गोपाल सिंह दर्दी भी हैं, तमिलनाडु का गवर्नर खुराना भी है, मुहम्मद यूनस भी···और और भी कितने ही हैं···

पार्लियामेंट में जब बिल पेश हुआ कि पार्लियामेंट के मेम्बरों की तनखाहें बढ़ाई जाएं, तो मैंने लेख लिखा था कि किसी भी साधारण आदमी से इन मेम्बरों के बारे में राय ली जाय तो वह कहेगा कि यह सब चोर हैं। वही चोर अगर खुद अपनी तनखाहें बढ़ा लें, तो यह कहां का न्याय है। इस लेख के खिलाफ एक सौ मेम्बरों ने "प्रिविलेज मोशन" तैयार करके दस्तखत किये थे। उसे हिदायतुल्ला ने डिसमिस किया था···नहीं तो···

इन मुश्किलों और मुसीबतों की आदत ही पड़ गई है अब तो। या तो दिल की कहूं, या कुछ न कहूं। सो, मैंने दिल की कहने का रास्ता चुना है···

? : आपकी दोस्त-नवाज तबीयत को कभी वस्फ के लिए कोई नामुनासिब कीमत भी देनी पड़ी है ?

खु : बहुत लोग दोस्ती का फायदा उठाते हैं, यह कीमत सो देनी ही पड़ती है। वैसे असल बात यह है कि मेरा कोई दोस्त नहीं है। मेरे वक्त को घुन की तरह लगे हुए लोग हैं···

? : आपकी नजर में दुनिया के वह कौन से अदीब या पत्रकार हैं, जिससे आपको कभी रश्क आया हो ?

खु : हिन्दुतान में तो कोई नहीं। वैसे इज्जत कईयों के लिए है—श्री मुलगांवकर के लिए, क्योंकि वह अंग्रेजी अच्छी लिखता है। अरुण शोरी और कुलदीप नय्यर के लिए एहतराम है, क्योंकि वह दिलेरी से लिखते हैं। पर अमरीका और बर्तानिया के पत्रकार कई हैं, जिनके लिए हसद जैसा अहसास आ जाता है···

? : कम्बख्त लेखक, "स्वयं" के इतिहास का पात्र भी होता है, और उसका इतिहास भी। खुशवंत सिंह की जिस कलम ने सिक्ख—इतिहास लिखा, वह कलम कभी खुशवंत सिंह की इतिहासकार बनेगी ?

खु : हां, अमृता, वह इतिहास भी लिखूंगा। वैसे तो कहानी नाविल में भी कितना ही "स्वयं" आ जाता है, पर जिंदगीनामा भी लिखूंगा, बल्कि कह सकता हूं कि कितना कुछ जेहन में से उतर कर कागजों के हवाले हो चुका है···मैं खुशवंत सिंह का इतिहासकार भी बनूंगा···उस इतिहास में कई वह सियासी वाकयात भी होंगे, जिनका चश्मदीद गवाह सिर्फ मैं था, या वक्त था।

जिंदगीनामा के कुछ हिस्से ऐसे हैं जिन्हें लिखते हुए मैं बहुत व्याकुल समय में से गुजरा हूं। वह तवारीखी हिस्से हैं। नेहरू, इंदिरा गांधी, संजय, मेनका, भुट्टो, मुजीबुर्रहमान, जियाउर्रहमान, जनरल टिक्का खां, जियाउल हक और दूसरी कई बुलंद हस्तियों से मिलने के मुझे खास तौर पर मौके मिले हैं, और मैंने उनके मिट्टी के पैर देखे हैं।

कई वह भी हैं जिन्होंने चालबाजियों से हैसियतें हासिल की हैं, चालबाजियों से, मक्कारियों से और हरामखोरियों से अहम पदवियों पर पहुंचे हैं। उन सबके बारे में मैं बेलाग होकर लिखूंगा। उनके बारे में मैंने बड़ी तफसील में नोट लिए हुए हैं।

? : आपकी जिंदगी की किसी दुखती रग पर हाथ रखने का मुझे या किसी को भी हक नहीं बनता। इसलिए सातवां सवाल आपके हाथ में सौंपती हूं कि अपने हाथ से उस रग को छूकर उसकी बात करें।

खु : जिंदगी भर जजबाती लगाव को नजर-अंदाज करते हुए कि वह मुझे कहीं से दुखा न जाए मैंने अपनी नसों को एक सहम में सुखा लिया है और इस तरह मैं जिंदगी के सबसे कीमती तजुर्बे से वंचित रहा हूं—यह मुहब्बत में पूरी तरह अर्पित हो सकने और पूरी तरह स्वीकार कर सकने का अहसास था···

और अब जब जिंदगी की सांझ का बेला है ("रहिरास" का या "मगरिब की नमाज" का) जिंदगी के इस शून्य को भरना मेरी दीवानगी बन गया है। क्या इस समय कोई वह मिलेगा जिससे मैं आवेश पूर्ण मुहब्बत कर सकूं, और वह भी उसी शिद्दत से मेरी मुहब्बत को लौटा सके?

यह आरजू मेरी जिंदगी के आखरी दिन तक रहेगी वह चाहे मुझे सोख ले, या मैं इसे अधूरी को अपने साथ कफन में लपेटकर ले जाऊं···

अनीस जंग से सात सवाल

? : अनीस ! कालिदास के मेघदूत में तीन किरदार हैं। एक मेघ — कुदरत का मोजज़ा, दूसरा किसी यक्ष की बिरहिणी, और तीसरा कालिदास, लफ़्ज़ों का बादशाह। लेकिन तुम्हारी क़लम यह तीनों किरदार तुम्हारी सूरत में पेश करती है। तुम मथुरा की गलियों के बारे में लिखो या हैदराबाद की गलियों के बारे में, कृष्ण लीला का रंग और नवाबी तौर-तरीक़े तुम्हारी क़लम से एक-सी ही शायराना फ़िज़ा पैदा कर लेते हैं—काले मेघ की तरह। और तुम्हारी क़लम जब दूत बनती है, तो उसमें तुम्हारे दो चेहरे दिखाई देते हैं, एक बिरहिणी अनीस का, और एक कालिदास अनीस का···

० : अमृता ! तुम्हारा यह सवाल मुझे अपनी इज़्ज़त अफ़ज़ाई लगा है। लेकिन इसका जवाब क्या दूं ? इस सवाल की रोशनी में अपने-आप को देखने और समझने का यत्न कर सकती हूं—

थोड़े-से दिन हुए, राजस्थान गई थी। यूनाइटेड नेशन्ज़ की ओर से आबादी के मसले पर जो काम कर रही हूं, उसके सिलसिले में। साथ में कुछ और लोग भी थे जो पता करते रहे कि वहां कितने लोगों ने 'आपरेशन' कराया है ? आबादी के मसले पर उनका नज़रिया क्या है ? वग़ैरह-वग़ैरह···लेकिन एक कैफ़े में चाय पीते हुए सिर्फ़ मुझे अहसास हुआ कि वहां की सारी धरती जैसे एक ताल में कुछ गा रही है···वह संगीत मेंह की बूंदों की तरह मुझे भिजाता रहा···

यह राजस्थान के माहवा गांव की बात है। मेरे पूछने पर मालूम हुआ कि आज गांव की हर औरत 'गणगौर' गा रही है। मालूम हुआ कि गणगौर वह त्योहार होता है, जिसमें हर ब्याही हुई औरत अपने मर्द का सुख मांगती है, और हर कुमारी अपने मर्द की कामना करती है···

मैंने जब एक घर में उनका पकाया हुआ खाना खाया, और जब उस घर की औरत किनारी वाला दुपट्टा अपने गिर्द लपेटकर गणगौर की पूजा के लिए चली तो मेरा अहसास मुझे उसके साथ ले चला···

गांव की सारी औरतें, क्या ब्याही और क्या कुमारी, हाथों में हरी घास की एक गड्डी लेकर उस पूजा-स्थल की ओर जा रही थीं—जहां मिट्टी की दो

मूर्तियां रखी हुई थीं, ईसर और गणगौर की। यह शिव-शक्ति के नाम हैं। मीलों तक बिछी रेत की दुनिया में—हरी घास से अधिक कीमती चीज़ कोई नहीं हो सकती।—सो यही अपनी दुनिया की कीमती चीज़ अर्पण करके वह औरतें गणगौर देवी के सामने एक तगड़े मर्द की कामना करती हैं, शायद शिव जैसे मर्द की···

अमृता ! वह पल शायद किसी सैल्फ़ रिअलाइज़ेशन का पल था। मैं उन साधारण औरतों के साथ मिलकर उसी तरह हाथ में हरी घास की गड्डी लेकर मैंने गाना भी चाहा, और गणगौर की पूजा भी करनी चाही। शायद यही बात मेघ होने का मोजज़ा है, किसी यक्ष की बिरहिणी होने का भी, और हाथ में कलम लेकर कालिदास होने का भी···नहीं जानती !

मैं अपने आपको अदीब नहीं समझती। मेरी कलम को कुछ भी इलहाम जैसा नहीं उतरता, पर ज़िंदगी से मुझे बेहद इश्क़ है। लगता है—वही इश्क़ अपने आपको लफ़्ज़ों में तर्जुमा कर लेता है···

एक बार मैं उड़ीसा में थी, पुरी में, जहां भरे जाड़ों के दिनों में एक रात टुंगी चली गई थी। टुंगी वहां के किसी गांव के चबूतरे को कहते हैं जहां आधी रात तक पुराणों की कथा होती है··· रात के दो बजे थे, जिस समय मैं वहां से वापस लौटी, और बहुत ठंड उतर आई थी···चाय पीने को जी किया, लेकिन आस-पास कहीं कोई चाय-घर नहीं था। एक जगह पर दिया जलता दिखाई दिया। मैं वहां चली गई।···वह एक औरत की चाय की दुकान थी···वह औरत जवान थी, लेकिन सफ़ेद धोती पहने हुए थी···लगा कोई विधवा थी, जो गुज़ारा करने के लिए चाय वेचती थी···

वह मुझे चाय का गिलास देकर मेरी बांहों की ओर देखने लगी। अचानक उसने पूछा—तुमने हाथों में चूड़ियां क्यों नहीं पहनी हैं ?

न जाने, उस पल मैंने किस तरह अपने आपको उसके साथ आइडेंटिफ़ाइ कर लिया—मैंने उसकी पतली-पतली और सूखी-सूखी बाँहों को हाथ से छूकर कहा—मैं विधवा हूं···

लगा—मेरे अन्दर की कुमारी औरत ने अपने आपको उस घड़ी में विधवा क्यों कर लिया, मैं नहीं जानती। वह औरत मेरी दोनों खाली बांहों को अपने हाथों से सहलाते हुए बोली—'ज़िंदगी में खुशी की नदी में भी तैरना होता है, ग़म की नदी में भी'···यह कहते हुए उसकी आंखें आंसुओं से भरी हुई थीं—और मेरी आंखों को लगा जैसे उन्हें भी उन आंसुओं की पहचान है···

दूसरे दिन सवेरे मैं एक मंदिर में गई, और देखा कि मंदिर के बाहर रंग-बिरंगी चूड़ियों की कई छोटी-छोटी दूकानें थीं। मैं कभी चूड़ियां नहीं पहनती, लेकिन उस दिन मैंने चूड़ियां खरीद-खरीद कर अपनी दोनों बांहें भर लीं···वह घड़ी भी न जाने कैसी थी, मैंने अपने आपको रात की विधवा से सुहागिन बना

लिया···

अमृता ! यह मेरे अन्दर की औरत की अन्दर का मर्द कब खो जाता है, कब मेरे बराबर हो जाता है, और कब मेरे सामने जीता-जागता हो जाता है, यह सब जो लिखती हूं, शायद उसी का जश्न है, और उसी बात का मातम···

? : साहिर की रोमांटिक नज़्में लाजवाब हैं। लेकिन राज़ो-नयाज़ की बात यह है कि उसने कभी किसी से मुहब्बत नहीं की थी। उसके बहुत नज़दीकी दोस्त चित्रकार हरकृष्ण के लफ़्ज़ों में वह अपने ऊपर इश्क़ तारी कर लेता था, ताकि एक जादू उसके गिर्द लिपट जाए, और उस जादू से कीला हुआ वह दो-चार हसीन नज़्में लिख ले। हरकृष्ण ने उससे इस हक़ीक़त का इक़बाल भी करवाया था। क्या तुम्हारी भी यही तकनीक नहीं है, स्वयं को हिपनोटाइज़ करने वाली ?

० : भई मैं साहिर की तरह शायर नहीं हूं, और नज़्में लिखने के लिए मुझे अपने ऊपर इश्क़ तारी करने की ज़रूरत नहीं है। इसलिए मैं जो रोमांटिक कैफ़ियत अपने ऊपर तारी करती हूं, वह स्वयं को हिपनोटाइज़ करने के लिए नहीं, स्वयं को पहचानने के लिए होती है···

उस वक़्त मेरे सामने जो मर्द होता है, अहमियत उसकी नहीं होती, अहमियत उस बात की होती है जो वह मेरे अन्दर से जगा लेता है···वह सिर्फ़ एक माध्यम होता है···

वह माध्यम एक औरत भी हो सकती है। वैसे इस मामले में अकसर मर्द होता है। मैं जब एक पल ख़ुमारी वाला छू लेती हूं, वह पल शायद ख़ुदा को छू लेने वाला पल होता है। लेकिन उस पल को अगर मैं हाथ से पकड़ना चाहूं, तो वह अलोप हो जाता है। उस पल को कुछ लम्बा भी करना चाहूं तो नहीं कर सकती। शायद इसलिए कि लोग बहुत-सारे पहिरनों में लिपटे हुए होते हैं, और वह लोग उस जागे हुए पल के बाद, अपने लिबासों में छिपना चाहते हैं। उनकी दुनिया का यही तक़ाज़ा है···

अमृता ! मैंने रूह के हुसन की सिर्फ़ कभी-कभी झलक देखी है, लेकिन किसी एक जगह पर रूह का दीदार नहीं किया। वह झलक मेरे लिए कीमती है, लेकिन स्वयं को हिपनोटाइज़ करने के लिए नहीं, स्वयं को पहचानने के लिए···

मेरे लिए एक लफ़्ज़ भी मीलों तक फैल जाता है। सो लफ़्ज़ों की भीड़ में मेरे लिए अर्थ खो जाते हैं···

? : अब मेरा सवाल यक्ष के बारे में है, बिरहिणी अनीस के यक्ष के बारे में। लेकिन यहां बिरहा लफ़्ज़ को मैं महदूद अर्थों में नहीं बरत रही हूं···

० : अमृता ! यक्ष लफ़्ज़ वक़्त के साथ अपनी सूरत बदलता रहता है। मैं जब बच्ची थी—बहुत पढ़ लेना, अमरीका जाना, किसी हसीन मर्द से इश्क़ करना मेरा यक्ष था। अब लगता है कि यक्ष का यह गिना-मिना नपा-तुला रूप नहीं है। वह हवाओं में फैल गया है। मसलन—आज जो मुझे यूनाइटेड नेशन्ज़ का एक किताब लिखने का

प्राजेक्ट मिला है, आज से पांच-सात साल पहले यह प्राजेक्ट मेरा यक्ष हो सकता था। लेकिन अब नहीं। अब यह सिर्फ़ काम है, रोज़गार का ज़रिया।

यह हो सकता है कि इस प्राजेक्ट को करते हुए, मुझे कुछ ऐसे कीमती पल मिल जाएं और किसी सच का किसी कोण से दर्शन हो जाए। अगर मिल गए तो वह पल कीमती हो जाएंगे। मेरे यक्ष-मिलाप के पल। नहीं तो यह सिर्फ़ रोज़ी-रोटी का साधन ही होगा, उससे ज़्यादा कुछ नहीं।

वैसे कह सकती हूं कि एक हसरत-सी बाकी है। जब मैं सफ़र करती हूं, किसी जगह रात पड़ने पर किसी घर में दिया जलता देखती हूं, तो साथ ही उस दिये वाली खिड़की के आगे एक पर्दा तना हुआ, तो उस कोने का दिया और पर्दा मेरे भीतर मेरे घर की हसरत जगा देता है। मैं साधू नहीं हूं, इसलिए दुनिया का एक गर्म-सा और बहुत निजी-सा-कोना मेरे ज़ेहन में मेरा छोटा-सा यक्ष है। वह जिस पर मेरे अस्तित्व का साया लिपटा हुआ हो, वह मुझमें सिमटा हुआ, फैला हुआ हो, और मैं उसमें···

अमीरी और ख़ूबसूरती में बहुत फ़र्क़ होता है। चीज़ों का संग्रह करते जाना ख़ूबसूरती नहीं। मिट्टी के बर्तन को सजा लेना ख़ूबसूरती है। एक फूल से मिट्टी को महका लेना ख़ूबसूरती है। मुझे एक कोना चाहिए—जिसे मैं अपने अस्तित्व से सजा लूं···

अमृता! उस ख़ूबसूरती को देख लेना यक्ष को देख लेना है···

मेरे जिस्म के पांच तत्व मेरे लिए बहुत अहम हैं। यह सिर्फ़ उस ख़ूबसूरती का हुंकारा भर सकते हैं, जो रूह से लेकर बाहरी फूलों जैसी वस्तुओं तक ख़ूबसूरत हो। बाहरी फूल किसी के मन की महक का हुंकारा हों, सिर्फ़ कमरे की सजावट नहीं।

? : एक बड़ा ही जाती सवाल पूछना चाहती हूं कि तुम्हारे ज़ेहनी यक्ष का जब भी किसी में तुम्हें साया मिलता है, तब कोई हिन्दू-मुसलमान का भेद तुम्हारे किसी ख़याल में हायल होता है या नहीं?

० : नहीं अमृता! मज़हब का मेरे तख़य्युल में कोई दख़ल नहीं है। सिर्फ़ तहज़ीब का है। और तहज़ीब का मज़हब से कोई वास्ता नहीं होता। उनका वास्ता सिर्फ़ इन्सानियत से होता है।

वह तहज़ीब भी सिर्फ़ अन्दरुनी तहज़ीब होती है, जिसका वास्ता इन्सानियत से होता है। बाहरी अदबो-आदाब वाली तहज़ीब नहीं···अन्दरुनी तहज़ीब किसी पिछड़े हुए गांव के इन्सान में भी हो सकती है···

? : ज़िंदगी की नागवार हक़ीक़तों ने कभी तुम्हारे तख़य्युल को संगसार करना चाहा?

० : जिस जगह पर कोई नागवार हक़ीक़त सामने आए, मैं उस जगह से किनारा कर लेती हूं। वह भले ही मेरे रोज़गार की एक बहुत बड़ी कुर्सी ही क्यों न हो।

अमृता ! मेरे अन्दर की खुशगवार हक़ीक़त इतनी ज़िद्दी है कि बाहर की कोई भी नागवार हक़ीक़त उसे संगसार करना तो एक तरफ़ रहा, उदास तक नहीं कर सकती।

? : अनीस ! कोई ऐसा ख़याल जो दिन की रोशनी से छिपता, रात की सीढ़ियां उतरकर किसी सुपने के अंधेरे में उतर गया हो ?

० : नहीं अमृता ! मेरे हर ख़याल को रोशनी से इश्क़ है। सिर्फ़ एक बात है, मेरी ओर से नहीं, लेकिन किसी बहुत ही प्यारे दोस्त की ओर से, कि मुझे कभी उसका नाम लेने की इजाज़त नहीं है। यह ख़याल मुझे तकलीफ़ देता है। इस दोस्ती की ख़ूबसूरती को ढककर, छिपाकर, उसे ख़ामख़ाह क़ुसूरवार बना देता है।

और उस दोस्त का नाम लेने के लिए मेरे होंठ प्यासे हैं, ख़ुश्क हैं। मेरे लिए वह दोस्ती ज़िंदगी का रहमो-करम है। इसलिए रहमो-करम जैसी ख़ूबसूरती से होंठ चुराना मेरे लिए तकलीफ़-देह है···

? : सारे राग सात सुरों से निकलते हैं। इसलिए ज़िंदगी के वसीअ पहलुओं को देखने-सुनने के लिए मैंने सवालों की गिनती सिर्फ़ सात रखी है। और साथ ही सातवें सवाल को मैंने यह रियायत दी है कि वह मेरे होंठों पर आने की बजाय, जवाब देने वाले के होंठों पर आए, ताकि ज़िंदगी का कोई अहम पहलू जो मेरी पकड़ में न आया हो, उसका जवाब वह खुद ही खोजकर ले आए। सो अनीस दोस्त ! अब यह सातवां सवाल भी तुम्हारा और जवाब भी तुम्हारा···

० : अमृता ! तुमने हर पहलू से सब कुछ पूछ लिया है। अब कौन-सी बात बाक़ी रह गई है ! लेकिन एक बात है, एक दुखती हुई सी जगह, जहां आज मैं ख़ुद ही अपना हाथ रख लेती हूं—कि कोई इन्सान अपने परिवार से कुछ ज़्यादा मेच्योर क्यों हो जाता है ? वह जब विकसित होकर अपने सगे-संबंधियों की तरफ़ लौटता है, तो घर के माहौल में एक अजनबी गंध फैल जाती है···

मैं एक नवाब की बेटी थी, इसलिए ऊंची दीवारों के साये में पली थी। लेकिन जब अमरीका पढ़ने के लिए गई, तो वहां होस्टल से एक मील चलकर पढ़ने के लिए जाना पड़ता था। उस वक़्त नवाबी घर की ऊंची दीवारें—दूर-दूर फैली, खुली सड़कें बन गई थीं, और मुझे एक अजीब स्वतंत्रता का अहसास हुआ था। फिर होस्टल ऐसा था जिसके सारे काम सारी लड़कियों को अपने हाथ से करने होते थे। जब पहले दिन झाड़ू देने की मेरी बारी आई, तो हाथों को आदत नहीं थी, लेकिन कांपते-से हाथों से भी जब लम्बी झाड़ू को पकड़ा, तब भी अजीब स्वतंत्रता का अहसास हुआ···

एक ओर मेरा फ़्यूडल रहन-सहन था, दूसरी ओर अमरीका का रहन-सहन। एक जगह ने मुझे जन्म दिया, दूसरी ने पाला, और फिर दोनों में तीसरी डाइमैन्शन मिल गई, जिससे दोनों की ब्लैंडिंग हो गई···और अब मैं अपने परिवार के आंगन में जैसे पूरी नहीं आती।

मैं अकेली रहती हूं, लेकिन उस आंगन का तसव्वुर करती हूं जिसमें खेलने वाले बच्चों की हंसी आंगन को भर रही हो। और भरे हुए घर में जो लोग घर के बरामदों में सोए हुए हों, उनके सांस मुझे सुनाई देते रहें···

बहुत स्वतंत्र हूं। लेकिन स्वतंत्रता भी किसी के साथ बांटनी होती है, नहीं तो यह महज़ एक ऐब्सर्ड-सी बात हो जाती है···

एक जापानी नज़्म याद आ रही है कि अपने आंगन में मिट्टी संवारकर आप एक पेड़ बीज दें। उसे जितना पानी और खाद चाहिए दे दें, और फिर उससे परे हो जाएं। उसे उगने और फैलने दें।— यह किसी पेड़ को अपने ही आंगन में रखना, और उसे उसके ही हवाले कर देना, मेरी नज़र में इन्सानी रिश्तों की तशरीह है···

इन्सानी रिश्तों को यह पेड़ों की तक़दीर न जाने कब मिलेगी !

राज गिल से सात सवाल

? : राज दोस्त, सुना हुआ है कि एक बार आपने एक हसीना की मुहब्बत में वान गॉग की दीवानगी जैसी हालत देखी थी, जब मोमबत्ती की लौ पर अपनी हथेली रख दी थी···

रा : यह ठीक है । पर मुझे समझ नहीं आती कि मैं इसको किस तरह बयान करूं। प्यार कहूं, पागलपन, या मन का कोई ज्वालामुखी-सा दौर, लेकिन उसके बाद मैंने उसी हसीना के साथ ब्याह भी किया, जिसे मैंने आज तक बीवी कहकर नहीं जाना, सिर्फ़ जीवन-साथी के रूप में माना है। अगर उसे बीवी कहूं, तो मुझे कुछ इस तरह लगता है जिस तरह कि मैं अपनी कार, घर या सोफ़े की बात कर रहा हूं, जबकि वह एक वस्तु नहीं, उससे कहीं ऊंचा दर्जा रखती है।

हमारी बातचीत भी एक बड़े ही अजीब तरीके से तय हुई थी। हमारा रिस्ता आम, साधारण और रवायती ढंग से होने वाला था। मेरे चाचाजी जो मेरे मौसा भी लगते थे, उन्होंने इस रिश्ते की बात चलाई, मतलब वह बिचौलिया बने। पर मेरा तब शादी करवाने का ज़रा भी मन नहीं था। सो उनसे चाचाजी के घर मिलने के बाद मैंने उसके बारे में अपनी राय बड़े अक्खड़ और खुरदरे ढंग से ज़ाहिर की "क्या ऊंटों में से भेड़ ढूंढ़ी है !" सो बात रह गई, रिश्ता न हुआ, और मैं आज़ाद पंछी रह गया।

वही हसीना एक दिन मुझे कनाट प्लेस में मिली : वह अपनी एक सहेली के साथ थी। मैंने "हैलो" के साथ चाय के लिए कहा। मन में पाप था कि मैंने उसके प्रति बहुत ज्यादती की थी, "ऊंटों में भेड़" वाली बात कहकर, जबकि असल में वह मुझे उस दिन एक बुलबुल सी लगी थी। उस दिन चाय के बाद हमारा मेलजोल बढ़ गया। दोस्ती हो गई। पर इश्क़ नहीं। शादी की बात एक बार फिर चली और मैं एक बार फिर ईंट मारकर भाग गया। साथ ही हमारी बोलचाल बंद हो गई।

लेकिन फिर भी हम चाचाजी के घर मिल ही जाते, और रस्मी तौर पर एक दूसरे का हाल पूछ लेते। फिर मेरा बहुत भयानक एक्सीडेण्ट हो गया और मुझे मिलिट्री अस्पताल में दाखिल करवा दिया गया। वह मेरा हालचाल पूछने

अस्पताल रोज़ आती थी। घर जाने के बाद वह मेरी मरहम-पट्टी भी करने आती थी। उन्हीं दिनों में किसी पल मैं दोस्ती की लकीर पार कर इश्क़ की सीढ़ी चढ़ गया और मेरे लिए उससे दूर रहना मुश्किल हो गया। सो मैंने शादी करने का फ़ैसला किया।

उस शाम, जिस शाम को मैंने जीवन-साथी बनने की बात की थी, मेरा कोई ऐसा इरादा तो नहीं था, हो ही नहीं सकता था, क्योंकि वह गर्मियों की शाम दिल्ली की उन शामों में से थी जो बहुत उजड़ी हुई लगती हैं, और गर्मी ज़्यादा न होने के बावजूद काफी उदास शामें होती हैं। जब मैं दफ़्तर से घर को चला था, मेरा उससे मिलने का या उसके घर जाने का कोई इरादा नहीं था। फिर भी जब मैं उसके घर के सामने से गुज़र रहा था, मेरे दिल में मालूम नहीं क्या हिलोर उठी कि मेरे पैर अपने आप उसके घर की ओर मुड़ गये, और फिर मैं उनकी बैठक में था और वह चाय बनाने में लगी थी। उस पल बत्ती चली गई। वह उठी और मोमबत्ती जला लाई, जिसे उसने एक प्लेट में लगा दिया।

उस मोमबत्ती की रेशमी झिलमिलाहट में उसे देखकर नहीं जानता मुझे क्या हुआ कि मैंने उससे शादी के लिए कहा। पर उसका ऐसा कोई इरादा नहीं था। उसने साफ़ न कर दी। दोस्ती ? ठीक। शादी ? बिल्कुल नहीं। लेकिन मैं तो किसी "न" को सुनने की हालत में ही नहीं था। मैं जिस बहाव में था उसमें रुकने या अटकने की बात ही न थी। उसने न की और मैंने अपनी हथेली मोमबत्ती की लौ पर ही रख दी और कहा कि जब तक वह शादी के लिए हां नहीं कहती मेरी हथेली लौ पर रहेगी।

? : आपकी "उस" ने उस पल की ताब कैसे झेली होगी ?

रा : उसे मेरी बात का यकीन नहीं आया था, इसीलिए वह मेरे मुंह की ओर देख रही थी, मेरी हथेली की ओर नहीं। शायद सोच रही थी कि सेंक लगते ही मैं तड़प कर हथेली खींच लूंगा। सेंक तो लगा। हाथ भी कांपने लगा, पर मैंने हथेली न खींची। मांस जलने की चिर्र-चिर्र की आवाज़ होने लगी और फिर सारे कमरे में जलते मांस की दुर्गन्ध भरने लगी। उसकी चीख निकल गई। उसने एक झटके में मोमबत्ती मेरी हथेली के नीचे से दूर कर दी। उस पल ही रोशनी वापस आ गई। कमरे में भी और हमारी ज़िंदगी में भी।

? : मोहब्बत की जिस दीवानगी को आपने अचानक एक दिन अपना आप सौंप दिया था, उस दीवानगी के आसार कभी पहले भी देखे थे ?

रा : हां। देखे थे। उतने ही प्रबल, जितने कि तब थे जब मैंने अपने प्यार को जीतने के लिए अपनी हथेली मोमबत्ती की लौ पर रख दी थी। मैं बात कर रहा हूं अपने हाई स्कूल के दिनों की, गांव के हाई स्कूल के दिनों की। वह स्कूल अब पाकिस्तान में है। उन दिनों में मुझे एक लड़की के साथ, जो मुझसे कोई साल-डेढ़ साल छोटी थी, मोहब्बत हो गई थी। मैं अपने प्यार की शिद्दत उसे जताना चाहता था, पर

सवाल था। कैसे ? यह सोच-सोच कर मैं पागल होता जा रहा था। फिर एक दिन तो मेरे अन्दर ऐसी हिलोर उठी कि मैं अपने इस इरादे को और टालने की हालत में नहीं था। सोचा कि आज तो इस बात का फैसला हो ही जाय। परिवार के सब लोग और नौकर गांव में किसी की शादी में गये थे। घर में मैं अकेला था। बेचैन सा चमगादड़ की तरह कमरों में चक्कर काट रहा था। एक में से निकलता तो दूसरे में घुस जाता था। कभी-कभी ऐसा लगता था कि मैं उसके पीछे-पीछे था। वह रुक जाती तो मैं तेज़-तेज़ उसकी ओर बढ़ता। पर मेरे उसको छूने से पहले ही वह फिर आगे को निकल जाती। मुझे उसकी इस हरक़त पर कहर चढ़ रहा था। मैंने मन ही मन में फैसला किया कि आज ही इस बात का निपटारा करके रहूंगा। पर कैसे ? यह एक कठिन सवाल था मेरे सामने।

मेरी हालत ऐसी थी कि कोई बात सीधी मन में आ ही नहीं रही थी। मैंने अपनी मुश्किल का हल कहीं और से ढूंढ़ना चाहा। फरहाद, मजनूं और महीवाल के इश्क याद किये। उनसे कोई राह ढूंढ़ने की कोशिश की। पर कोई राह न मिली। उनके समय और मेरे, आज के समय में बडा अन्तर था। जो वे कर गये थे, वह आज नहीं हो सकता था। मैं कोई न्यारी, दूसरों से अलग बात करना चाहता था। फिर मुझे एक राह सूझी, न्यारी और विशेष, कि मैं अपनी मोहब्बत का इक़रार अपने लहू की स्याही से लिख कर करूंगा। किसी और आशिक ने अभी तक ऐसा नहीं किया था, ऐसा मेरा विचार था।

मैं रसोई में गया और चाकू-छुरियों के मुंह परखे। सारे धारहीन थे। साग, गाजर, मूली काटने लायक, पर मेरे काम के लिए नहीं। दूसरे हथियारों में थे दरांती हंसिया, कुदाली, कुल्हाड़ियां, तलवारें और 'दाउ'। मैंने 'दाउ' चुना। तलवारें तेज़ थी, पर बड़ी थीं। मेरे काम की नहीं थीं। मैं यह भी नहीं चाहता था कि मैं अपने आप पर कहीं चीर या ज़ख़्म कर बैठूं और मेरे घर वाले मेरे पीछे हो जाएं। गांव में इश्क क़त्ल होता है !

'दाउ' को मैंने एक ईंट पर तेज़ किया, जितना हो सकता था। फिर मैं अंदर से कापी और कलम लाया और शेड में चला गया। मैं नहीं चाहता था कि किसी कमरे में यह काम करूं। अगर कहीं लहू का कोई छींटा पीछे रह जाता तो आफ़त हो जाती। कौन आया था ? कौन गया था ? मैं कहां था ?

'दाउ' के साथ कट लगाने भी मुश्किल हो गये। एक ध्यान तो यह था कि कट कहीं बड़ा न लग जाए कि घर वालों को बताना पड़े कि क्यों लगा है। और दूसरा यह कि कहीं कोई हड्डी न टूट जाए। कट सिर्फ जांघों और पिण्डलियों पर लगा रहा था। पर हर वार के बाद या तो माँस पर एक सफेद लकीर डल जाती थी जो धीरे-धीरे काली हो जाती थी और या उसमें से लहू इतना-सा निकलता था कि वह स्याही नहीं बन सकता था। कोई आधे घण्टे में दो-अढ़ाई पंक्तियां लिखीं। पर वो भी पढ़ी नहीं जाती थीं। लहू या तो निब पर सूख जाता

था, और या स्याही की तरह चलता नहीं था। आखिर मैंने चिट्ठी लाल स्याही से लिखी और अपने दस्तखत अपने लहू के साथ किए। जब तक मैंने वह चिट्ठी खत्म की, मेरी दोनों जांघें और पिण्डलियां सब ज़ख्मी हो गये थे। अब आप इसे दीवानगी कहें या पागलपन, आपकी मर्ज़ी है।

? : ज़िन्दगी के तजुर्बों का कोई ऐसा वक्त-पल, जिसकी उम्र आपके ख्याल में आपकी ज़िन्दगी के वर्षों जितनी लम्बी हो गई हो ?

रा : जी, है, ऐसी एक घड़ी, एक पल जिसमें मुझे अपना आप एक इन्सान से बदलकर एक हैवान का लगा था। एक दरिंदे का। एक खूंखार दरिंदे का। उस वक्त नहीं, पर अब जब ख्याल आता है, रोम-रोम कांप जाता है। किसी कुएं में छलांग मार देने को जी चाहता है। वह वक्त, वह विचार, वह घटना मेरी रूह का कैंसर बन गई है। और रूह के कैंसर का कोई इलाज नहीं, यह शाश्वतता है, जब तक वह इन्सान जो इस घटना का मुख्य पात्र था, मुझे दिल से, मन से माफ नहीं कर देता। माफ करके गले नहीं लगा लेता।

बरसात निकल गई थी, मुल्क आज़ाद हो गया था। बंटवारा हो गया था। मुल्क वाले बेमुल्क हो गये, और बेमुल्क मुल्क वाले। शायद ऐसी होनियों को ही इस तरह बयान करते हैं कि सूरज पूरब से नहीं, पश्चिम से निकला है।

नित्य आग, बलवे, लूटमार की खबरें पढ़ते थे। सुनते थे। डरते थे कि हम पर भी वही गुज़रनी है, जो रावलपिंडी वालों और पोठोहारियों पर गुज़र रही है। गांवों के गांव कत्ल किये जा रहे थे। लूटे जा रहे थे। कुओं के कुएं लाशों से भरे पड़े थे, औरतों, लड़कियों और बच्चों की लाशों से, जिन्हें आत्महत्या किसी गुण्डे के हाथों में पड़ने से ज़्यादा प्यारी थी। हम वहां से कोई ज़्यादा दूर नहीं थे। लायलपुर में थे। भारत की सीमा से कोई तीन सौ मील दूर। बिना सहारे। बिना मदद। बिना ओट। अपनी हिफ़ाज़त के लिए तैयारियां ही कर रहे थे। छतों पर ईंट-पत्थर इकट्ठे किये थे। लम्बे बांसों पर कपड़ा बांध कर मशालें बनाई थीं, जिनको मिट्टी के तेल में भिगोकर आग लगाकर छतों से औरतें बच्चे भी हमलावरों को जला सकते थे। रात को पहरा भी लगता था।

खबरें पढ़-पढ़ कर, सुन-सुनकर दिल जला हुआ था। मन में बदले की भावना सुलगती-सुलगती आग की ज्वाला बनने वाली थी। रोज़ सोचता था कैसे उन निर्दोषियों का बदला लूं जिन्हें मज़हबी मुतसवियों ने मारा था। मारते जा रहे थे। मुझे एक चाल सूझी बदला लेने की, बहुत बड़ा तो नहीं, छोटा, पर बदला। और मैंने वह चाल चल दी।

मैंने अपने माल्टे के बाग की दीवार पर एक शीशम के साथ टेक लगाए बैठा था। अपने सिर के पास शीशम की एक दोशाख में मैंने खुकरी टिकाई थी। यह खुकरी मेरे बड़े चाचाजी दूसरे महायुद्ध में बर्मा से लाए थे। बहुत भारी और तेज़ थी। सांड, बकरे की गर्दन भी एक वार में उतार देती थी। एक टहनी पर से

मेरा गंडासा लटक रहा था। गंडासे की धार उस्तरे से भी तेज़ थी। और कमर में पेशावरी कमानीदार चाकू था, इतना तीखा कि टांगों के बाल उतार देता था। मैंने बन्दूक भी लाने की सोची थी, पर बन्दूक की आवाज़ होती है, इसलिए नहीं लाया। फावड़ा माल्टे के पेड़ के नीचे रखा था। वह जगह मैंने चुनी थी, इस वजह से कि वहां सारा दिन छाया रहने से ज़मीन नर्म थी। कब्र, बिना ज़्यादा मेहनत के खोदी जा सकती थी।

बरसात गुज़र चुकी थी। सितम्बर का महीना था, पर अभी धूप में तपिश थी और हवा में गर्मी। छाया अच्छी लगती थी। मैं दीवार के साथ टेक लगाए बैठा हिसाब लगा रहा था कि वार कैसे करूं। चुपके से मारूं या बता कर ? खुकरी के साथ मारूं या गंड़ासे से ? अगर पहले वार में न मरा ? और पलटकर हाथापाई कर बैठा, तब क्या करूंगा ? फिर तो चाकू ही निकालना पड़ेगा। यह सोच ही रहा था कि गांव की ओर से जाली आता दिखाई दिया। जाली श्रमिक था। जुलाहों का बेटा था। मेरे साथ पढ़ता था। मेरा गांव में सबसे जिगरी दोस्त था। मुझे उन दिनों में भी छुआछूत से बड़ी नफ़रत थी। और मेरा दिल हमेशा श्रमिकों-कारीगरों का कुछ संवारने को होता था। सोचता था कि मैं भी उनमें से किसी एक की जगह पर हो सकता था। जाली को मैंने दोस्त ही नहीं बनाया था, उसे पढ़ाता भी था। वह क्लास में सबसे नीचे था। मैं उसे धीरे-धीरे ऊपर के दस लड़कों में ले आया था। मैं अपनी स्कूल की रोटी में उसके लिए भी एक परौंठा लेकर जाता था।

"हरि राज ! बुलाया था ?" जाली ने कहा, दीवार के नीचे की खाई की मुंडेर पर खड़े होकर।

"हां, जाली। इधर आजा। बाग की ओर।"

उसने दीवार फांदी और खिड़की वाली दीवार की खाई की मुंडेर पर खड़ा हो गया।

"क्या बात थी ?" उसने पूछा। पर मैं बोला नहीं। मैं देख रहा था कि उसकी शील मुर्गे जैसी गर्दन दीवार के बराबर थी। बड़े आराम के साथ।

"हरि राज ! क्या बात है ? ठीक तो है ? चल गाँव को। मुझे लगता है तू ठीक नहीं।"

"चलते हैं पर जा पहले दो-तीन माल्टे तोड़कर ला। देख लेना कच्चे न हों।"

वह बाग में चला गया और मेरे लाडले रेड ब्लड माल्टे के पेड़ से चार माल्टे तोड़ लाया। मैंने माल्टे लेकर दीवार पर रख लिए और फिर एकटक उसकी ओर देखने लगा। वह परेशान-सा हो गया।

"बताएगा नहीं कुछ ?"

"बताता हूं, बताता हूं।" मुझे खीझ-सी आने लगी-- उसकी नादानी पर।

जातीय फसाद दोनों देशों में ज़ोरों पर थे। और वह पागलों की तरह बिना छड़ी पकड़े बाग में आ गया था।

"जाली, तुझे डर नहीं लगता ?"

"डर किस बात का ?"

"क्यों, अगर तुझे मैं रावलपिंडी में मारे गए लोगों के बदले में मार दूं।"

"फिर क्या ?"

"फिर कुछ नहीं ? तेरा मतलब है तू मरना चाहता है ?"

"नहीं मरना तो नहीं चाहता, पर अगर यार के हाथों मरूं तो यह शहीदी से भी ऊंची बात है।"

"जा पागलपन न कर।"

"करके देख ले," उसने कहा और सिर पीछे को फेंककर अपना हलक पेश कर दिया। उसने अपनी आंखें बंद कर ली थीं। शायद अपने यार का कुरूप रूप नहीं देखना चाहता था। थोड़ी देर बाद उसने हैरान होकर आंखें खोलीं और निराश मेरी ओर देखने लगा।

"जा पांच-चार माल्टे और ला !"

वह चला गया और छह माल्टे और ले आया।

"ले जा घर", मैंने माल्टों की ओर इशारा करते हुए उससे कहा। मेरी आवाज़ बहुत रूखी और बेजान-सी हो गई थी। वह चला गया। जब वह कोई सौ गज़ चला गया, तो मेरी दहाड़ें ही निकल गईं। मैंने अपने ज़िगरी दोस्त को छिपकर मारने का मनसूबा बनाया था, और उसने मेरी खुशी के लिए अपना सिर हथेली पर रखकर पेश किया था, अपने दोस्त की खुशी के लिए।

? : आपकी ज़िन्दगी की कोई ऐसी घटना, जिसने आपका हाथ पकड़कर आपके ज़हनी नज़रिये का रास्ता बदल दिया हो ?

रा : मैं आपको पहले ही अपने दोस्त जाली की बात सुना चुका हूं। उस घटना ने मेरी ज़िन्दगी में एक मौलिक तबदीली ला दी है। मैं उस घटना के बाद आज तक किसी का बुरा नहीं सोच सका। मैं किसी की बुराई नहीं करता। किसी से बदला लेने की भावना नहीं पालता। मुझे अपने इस नज़रिये की खातिर कई बार आर्थिक और सामाजिक नुकसान हुआ है। पर फिर भी मुझे अपना यह नज़रिया छोड़ने की ज़रूरत महसूस नहीं हुई। कई लोग इसको मेरी कमज़ोरी गिनते हैं, पर मैं आपको बता सकता हूं कि किसी को घूंसा न मारने के लिए कहीं बड़ा दिल और साहस चाहिए, मारने की अपेक्षा। इसलिए एक विशेष आत्मविश्वास की भी ज़रूरत है। मुझे इस नज़रिये ने ज़िन्दगी में बहुत मदद दी है। मैं अब ज़िन्दगी के हर संकट से बिना डर, फिक्र या बेचैनी के निपट सकता हूं, निपटा हूं।

कभी-कभी मैं सोचता हूं कि उस घटना के कारण मेरे मन से डर और किसी को नुकसान पहुंचाने का जज़्बा सदा के लिए निकल गया है। इसके बाद मेरे मन

में एक बड़ा ही सन्तोष और सन्तुलन आया है। शायद इसी कारण मैं किसी की बड़ाई या आलोचना से न खुश होता हूं, न नाराज़। और शायद इस कारण ही मैं भीड़ में या अकेलेपन में एक-सा खुश रहता हूं।

? : एक पत्रकार होने के नाते सियासतदानों के साथ आपका अकसर वास्ता पड़ता है। कभी कुछ ऐसा भी सामने आया, जिसे वक्त का तकाज़ा समझकर आपने लिखने से गुरेज़ किया हो ? और अगर ऐसा कुछ आपने मन के किसी कोने में रखा हुआ है, तो किसी दिन वक्त के चश्मदीद गवाह होने के नाते इतिहास की नज़र करेंगे ?

रा : अमृता जी ! सियासत एक आइसबर्ग की तरह है। जो दिखता है, जो लोगों को अखबारों या और माध्यमों द्वारा बतग्या जाता है, वह तो असल का सिर्फ़ आठवां हिस्सा ही होता है। बाकी का तो दबा रह जाता है।

आप पूछेंगी कि एक पत्रकार के नाते यह मेरा फ़र्ज़ बनता है कि मैं सच बताऊं। ठीक है, पर कई बार सच इतना चिकना होता है कि उसे पकड़ते-पकड़ते खुद ही मुंह के भार गिर पड़ते हैं। और कई सच्चाइयों की पूर्ति पर, बीच में ही सरकार की ओर से या अखबारों के मालिकों की ओर से "बस और नहीं" की मोहर लगा दी जाती है। और सच अनपहचाना, अनजाना रह जाता है लोगों के लिए, और कितने ही पत्रकार उस अनबताए सच को अपनी छाती में लेकर मर जाते हैं। यह नहीं कि वे बताने से डरते थे, पर इस कारण कि वे बता नहीं सकते थे। अगर बताते तो साबित नहीं कर सकते थे और जो साबित नहीं कर सकता उसकी सज़ा जेल है। और जिस सच के लिए जेल हो जाए उसे कोई सच नहीं मानता।

सियासी सौदेबाजियों की कोई गवाही नहीं होती। कोई दस्तावेज़ नहीं होता। सियासी चालों के कोई निशान नहीं होते। इस कारण उनके बारे में लिखना मुश्किल हो जाता है। फिर पत्रकारिता की आज़ादी का सौ डंका बजता रहे, यह असल में है नहीं। जो है, वह भी नाममात्र है। कुछ आप इसलिए नहीं लिख सकते कि आपका एडीटर नहीं चाहता। कुछ इस वजह से नहीं लिख सकते कि अखबार का मालिक नहीं चाहता। और कुछ आपको सरकार धमकी देकर लिखने से रोक देती है। इसके बावजूद भी बहुत-सा सच लिखा जाता है, पर वह सच जिसकी गवाही पेश की जा सकती है।

पर मैं किसी भी सच को, जिसका मैं गवाह हूं, अपनी छाती में लेकर नहीं मरूंगा। वक्त का इन्तज़ार है। वक्त आने पर ज़रूर उस पर रोशनी डालूंगा। फिर मेरे पास तो दूसरे पत्रकारों से एक रग ज़्यादा है, जो मेरे बहुत काम आती है। वह रग है मेरी नॉवल और कहानियां लिखने की शैली। जो मैं अखबार में खबर के तौर पर नहीं लिख सकता, उसे अपने नॉवल कहानियों में पेश कर देता हूं, इतने कुशल ढंग से कि पढ़ने वाले को कुछ बूझना न पड़े।

मैंने इस युक्ति का पूरा लाभ उठाया है, अपने "रेप", "टार्च बीअर" (अंग्रेज़ी) और "जंग तेग" (पंजाबी) नावलों में। किसी को कोई मुश्किल नहीं होती, पात्रों या घटनाओं को पहचानने में।

अंत में अपनी आत्मकथा तो है ही। जो नॉवलों, खबरों, कहानियों में नहीं लिख पाया, उसे वहाँ कलमबद्ध करने का यत्न करूंगा।

पर कभी-कभी तो अमृता जी, जो सियासत के कारनामे सामने आते हैं, उससे इतनी घृणा आती है कि अपनी कलम को गंदा करने को भी जी नहीं चाहता। आज़ादी और देश के बंटवारे का ड्रामा, लीडरों का किरदार, हड्डी चूसने वाले कुत्तों से भी नीचा था। रिश्वतें, एय्याशियां, विरोधियों को मारने, खत्म करने की स्कीमें, किसी की पतंग का एकदम आसमान पर चढ़ जाना, और फिर चढ़ाने वाला ही उस पतंग की डोर तोड़ दे, क्यों? लोकतन्त्र और समाजवाद के नारे लगाने वाले कैसे वोटों को आर्थिक सत्ता से ऊपर नहीं आने देते, इस डर से कि वोट खो जाएंगे। कैसे राज्यों में गड़बड़ करवाई जाती है, जातीय फ़साद करवाए जाते हैं, राजसी सत्ता अपने हाथों में रखने के लिए, ये सारी बातें विस्तार से बताने वाली हैं। कैरों का कत्ल, कामराज प्लान, कांग्रेस का बंटवारा, संजय गांधी का हवाई हादसा, कर्नल आनन्द की ख़ुदकशी, डी० आई० जी० अटवाल का कत्ल, इन सबके पीछे एक-एक ख़ास कहानी है, जिसे बताने के लिए अभी वक्त लगेगा। पर जिसे, कुछ बाज़मीर पत्रकार मरने से पहले ज़रूर बताएंगे। और अगर ईश्वर भली करे तो जो मैं जानता हूं, जिसका मैं गवाह हूं, वह भी जरूर बताकर मरूंगा। अपनी शान्ति के लिए, और लोगों के प्रति, पत्रकार होने के नाते, अपना फ़र्ज़ निभाने के लिए।

? : राज ! मेरा सातवां सवाल आपकी आरज़ू के बारे में है, जिसे बहुत नज़दीक से छूने का सिर्फ़ आपका हक बनता है। इसलिए सातवां सवाल आपके हाथ में ही देती हूं...

रा : अमृता जी ! आपको यह सुनकर हैरानी होगी कि मैंने अपनी ज़िन्दगी में ख़्वाहिशें पालीं ही नहीं। मैं ज़िन्दगी के हर उतार-चढ़ाव में संतुष्ट रहा हूं, और मेरा मन तृप्त रहा है। हालांकि यह बात मानने लायक नहीं लगती। मुझे आज तक न किसी से जलन हुई है न ही किसी के प्रति ईर्ष्या की भावना कभी मेरे मन में पैदा हुई है। जिन दिनों में मैं बेरोज़गार था, तब भी मैं कभी हाल-बेहाल नहीं हुआ था, कुढ़ा नहीं था, तड़पा भी नहीं था, हालांकि कभी-कभी उदास हो जाता था। उन दिनों में भी मैं प्रसन्न रहा था, किताबें पढ़कर, लम्बी सैरें करके, या आकाश में उड़ती चीलों, बाजों, कबूतरों को देखकर। जब यह सब कुछ नहीं कर रहा होता था, तब बिना सोये सपने देखकर समय काट लेता था।

जब कभी मैं किसी संकट में पड़ा हूं, मैंने उसे चुपचाप सह लिया है, उसके बारे में हाहाकार नहीं मचाई। सच तो यह है कि मैंने अपनी तंगी, उदासी, चिंता,

कभी किसी के साथ साझी नहीं की, अपने जीवन साथी के साथ भी नहीं—क्योंकि मैं ज़िन्दगी में सिर्फ़ अच्छी बातें और खुशियां ही दूसरों के साथ बांटना चाहता हूं, और कुछ नहीं।

मैंने ज़िन्दगी को कुछ ऐसी बेपरवाही के साथ ही स्वीकार किया है जिस तरह आप रास्ते में पड़ी किसी झाड़ी के बेर स्वीकार कर लेते हैं। आप घर से बेरों के लिए नहीं निकले थे, राह में मिल गए तो तोड़ लिए। शायद अपने इसी स्वभाव के कारण ही मैं कभी अपनी किसी प्राप्ति या सम्मान मिलने पर चुंगियां नहीं भरता, लोगों में डौंड़ी नहीं मचाता कि "यह मैं हूं" जिसे सम्मान दिया गया है। ज़िन्दगी में ख़्वाहिशें तो नहीं रहीं, पर मन के कुछ तकाज़े ज़रूर रहे हैं, और अभी हैं भी। मन के इन तकाज़ों के कारण मैंने खतरे मोल लिए, जो नहीं करना था किया, शिकार पर गया जबकि न मांस की ज़रूरत थी न सींगों या खाल की, स्वाभाविक व रवायती से उल्टा किया, दूसरों से अलग रास्ता अपनाया, सांप की पूंछ पकड़ी, चीतों के साथ पिंजरों में बैठकर बातें की, अनजाने लोगों की बिना उनके कहे मदद की, और ऐसी ही कई और बातें।

पर मेरी एक चिंता ज़रूर है, जिसे आप चाहें तो आरज़ू कह लें। मैं घर, गांव, कस्बे या शहर में मरना नहीं चाहता। हालांकि यह भी सच है कि मैंने कभी अपनी उम्र या मौत के बादे में सोचा ही नहीं। पर जब मेरी आ जाए, तो मैं जंगल में मरना चाहूंगा। मुझे आशा है कि जब मेरी आएगी, मुझे पता लग जाएगा। आप जानते ही हैं कि मुझे जंगल के साथ कितना स्नेह है। मैं जंगल में घुसते ही सारी दुनिया की चिंताएं और फ़िक्र भूल जाता हूं। अपने इर्द-गिर्द छिपे या घूमते हुए जानवरों का डर भी मेरे लिए नशे जैसा होता है।

मैं जंगल में वैसे ही मरना चाहता हूं जैसे जंगल के जानवर, मतलब शेर, हाथी आदि जानवर मरते हैं एक मान और शान के साथ। जिन्हें मौत आती नहीं, ये मौत को स्वीकार करते हैं। मैं भी अपने आए वक्त पर जंगल में कोई गुप्त, अकेला कोना ढूंढ़कर, डूबते सूरज की ओर मुंह कर बैठ जाऊं और फिर उठूं नहीं, कभी भी नहीं।

मसऊद मुनव्वर से सात सवाल

? : मसऊद ! सुना है कि आपने एक नई नमाज़ ईजाद की है ?

म : नमाज़ असल में इन्सान की असल फ़ितरत की तरफ़ वापस लौट आने का अमल है। नमाज़ में खड़े होने से लेकर सुजदे तक तीन अलग-अलग मैटाफ़र हैं, अलंकार हैं। जो आदमी को उसकी वह मासूमियत वापस लौटा देते हैं जो उसके पास मां की कोख में थी। इस्लाम प्रकृति का धर्म है, दीने-फ़ितरत, और हमारे नबी ने कहा "हर बच्चा इसी प्रकृति के धर्म के अनुसार जन्म लेते हैं।"

नमाज़ में पहला आसन खड़े होना, उसके एक होने का संकेत है। और उसके बाद जब वह रुकू करता है, यानी अपने शरीर के केन्द्र पर 90 डिग्री का कोण बनाता है, उस समय वह त्रिकोण बनती है, जो इस सृष्टि में सृजन का बुनियादी प्रतीक है। पैरों से लेकर कमर तक शून्य है। कमर से लेकर सिर के बालों तक वक़्त है। और सिर के बालों से लेकर पैरों के नाख़ूनों तक एक अदृश्य लकीर है, जो प्रकाश की गति का संकेत है। यहां उन तीनों प्रतीकों से वह त्रिकोण बनती है जो इस पृथ्वी में किसी भी नई हक़ीक़त को जन्म दे सकती है। यही वह त्रिकोण है जो दमिश्क़ की पुरानी मसजिदों से लेकर हिंदुस्तान के पुराने धार्मिक स्थानों में दोहरी त्रिकोणों की शक्ल में मौजूद है।

तीसरा आसन सिजदे का है, जहां आदमी धरती माता की कोख में अपने उस आसन को दोहराता है, जो उसने अपनी मां के पेट में अपनाया था। मासूमियत मुकम्मल हो गई, आदमी धरती माता से जुड़ गया।

अब सबसे कठिन काम इस सजदे को बनाए रखना है। आज की दुनिया में कोई सूफ़ी, कोई फ़क़ीर, कोई मुल्ला इन्सान को उसके असल की ओर नहीं ले जा रहा है। लोग सोए हुए हैं—आंखें खोलकर सोए हुए लोग ! इस हालत में मैंने नमाज़ को एक घिसा-पिटा रिचुअल देखा है। रिचुअल निभाने वाले लोग मूर्ख होते हैं। मैंने इस मूर्खता से वापस लौटने के लिए वह दिशा तोड़ दी है जो काबे की सच्चाई को सीमित करती है। क़ुरान ने मुझे यह शिक्षा दी है कि वह इन्सानों के लिए आया है—एक हिंदू, एक सिक्ख, एक ईसाई, एक बौद्ध, एक यहूदी भी मुसलमान हो सकता है। मुसलमान—जो उसका हुक्म माने। उसके हुक्म मानने

के लिए, अपने आपको माने। आज लोग अपने आप से इनकारी हैं। इस इनकार को तोड़ने के लिए, मैंने सारी दिशाओं की ओर मुंह करके, सारी मानवता को अपना रूप मानकर, छह दिशाओं को काबे में तब्दील कर दिया है।

पुराण कहता है—मुझे इससे कोई प्रयोजन नहीं कि आपके मुंह पूरब की ओर हैं कि पच्छिम की ओर। इस स्थिति में, सारे इन्सानों को एक करने के लिए, छह दिशाओं की नमाज़, छह दिशाओं का नृत्य, छह दिशाओं का कशफ़, यानी अपने 'स्वयं' का अपने ऊपर प्रगटाव, मैंने ईजाद किया है। अपनी जात की एक नयी क़ीमत की तरह अपने सोए हुए मैं को जगाने के लिए।

सोया हुआ व्यक्ति वह है जिसे यह ज्ञात न हो कि वह कहां है, और क्या कर रहा है। मैं अपने इर्द-गिर्द की इस स्थिति को जगाने के लिए, इन छह दिशाओं के नृत्य का ढोल बजाता हूं। छह बार ज़ोर से सांस लेता हूं, ताकि शरीर का एक-एक रोम सांस लेने लगे, जाग पड़े, आक्सीजन सारे शरीर में बड़ी सहूलत से गुज़रे।

नमाज़ के आरंभ में मैं इस महाद्वीप का वह सैक्यूलर कलमा तीन बार अलापता हूं—ओं, अल्लाह, वाहगुरु—जिसे आपके कहने पर अब मैंने बदल-कर—ओं, अल्लाह, एक ओंकार कर दिया है।

तीन-बिस्मिल्लाह के सभी अंकों का आख़री जोड़ है। बिस्मिल्लाह के अंक हैं 786। इन्हें जोड़ें तो गिनती तीन आती है। यह तीन रुकू की त्रिकोण है। यही त्रिकोण ईसाई धर्म में ईशु, मरियम, और ख़ुदा बन जाती है। क़ुरान के आरंभ में अलिफ़, लाम, मीम। और रोशनी के तीन बुनियादी रंग—काला, सफ़ेद और लाल।

और इस कलमे के साथ धमाल शुरू होती है। मैं अपना दिन दूध और संगीत से शुरू करता हूं। सूरज मेरे पैरों के नाख़ूनों से उगता है, और मेरे शरीर के अंदर पूरे आकाश की यात्रा करके मेरी आंखों के पीछे 'मनफ़ी' की ओर चला जाता है।

धमाल के बाद मैं तौबा की नमाज़ की नीयत करके छह दिशाओं की ओर एक-एक बार सूरत-ए-फ़ातिहा पढ़ता हूं। नमाज़ पूरी करता हूं। और सलाम के बाद तीन बार गायत्री, और तीन बार "अखंड मंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरं, तत्पदं दृष्टं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः। गुरुर्ब्रह्मा, गुर्रुविष्णो गुरुः देवो महेश्वरः, गुरुरेव परमब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नमः।"

अगर हिन्दू नाराज़ न हों तो मैं भेद की एक बात बताऊं कि ब्रह्मा विष्णु महेश मेरी त्रिकोण की वही तीन लकीरें हैं जो मैं रुकू में बनाता हूं। मेरा दिन इसी नमाज से शुरू होता है। और अगर नमाज़ न पढ़ूं तो दिन शुरू ही नहीं होता।

? : जलावतनी के दिनों में कोई ग़ैरमामूली रचनात्मक या आत्मिक तजुर्बा हुआ है?

म : जलावतनी अपने आप में मेरी ज़िंदगी का सबसे मिसाली तजुर्बा है। राम का

वनवास, शिव की कैलाश पर इबादत, कृष्ण का कंस से दूर रहकर पलना, सिद्धार्थ का यशोधरा को छोड़कर जाना। रसूले-करीम का चालीस साल तक ग़ारे-हिरा (हिरा की गुफा) में बैठना, यूनिस का मछली के पेट में क़ैद होना और नानक का अपने पैत्रिक धर्म-स्थान से दूर ईराक़ और मक्के की यात्रा करना। इन सब सुपनों का सुपना मेरा लाहौर का त्याग है।

मैं हिंदुस्तान आकर सबसे पहले बौद्ध गया गया गया था। मैंने बौद्धी वृक्ष से, उस पीपल के पेड़ से बातचीत की। पूछा "मेरी बारी आ गई है?"—मेरे अंदर से आवाज़ आई "मूर्ख, कम अक़ल, अपने अन्दर झांक। तू इस काबिल है?"

वहां से मैं बनारस गया। काशी में, गंगा के किनारे पर श्री पंचाग्नि अखाड़े के महंत श्री गोविन्दानंद के पास रहा। वहां मैंने एक लंबी उर्दू कविता लिखी, जिसकी दो पंक्तियां हैं:

मैंने सुनी हैं शिव और पार्वती की बात
मैंने काटी हैं कैलाश की काली रातें।

पर एक बात मैं बता दूं कि शुरू-शुरू में गहरे दुख के प्रेत ने मुझे मोड़ा-तोड़ा, और मेरे शरीर का मुरंडा कर दिया। और कुछ समय के लिए मैं अपने आपको जैसे छोड़ गया। लेकिन धीरे-धीरे मुझे लगा कि यह दुख, यह परेशानी, यह उदासी, यह क्रोध, मेरे वजूद में ग़ैर-मुल्की वजूद है।

मेरे शरीर के शीतल केन्द्र से उनका कोई संबंध नहीं है। और धीरे-धीरे मैं वतन, जलावतनी—दोनों क़ैदों से मुक्त हो गया। यह मुक्ति असली आज़ादी है। अब चाहे मुझे सीमा के आर या पार फांसी भी दे दी जाए, तो यह घटना मेरे अपने लिए तिनके से भी हल्की होगी।

? : मसऊद! आप का जन्म उस दरिया के किनारे पर हुआ था जिसे आशिक़ों का दरिया कहा जाता है। आपके जिस तख़य्युल ने आपको जलावतन किया, मैं उसे भी आशिक़ी कहती हूं. लेकिन यह बताइये कि उस चिनाब को, उस मिट्टी को, अपनी बीवी और बच्चों को छोड़ते समय रूह का कैसा-सा तूफ़ान था, जिसे आपने सुक़रात के प्याले की तरह पिया था?

म : मुझे याद आ रहा है—लाहौर एयर-पोर्ट, 21 अक्तूबर 1979, रात के आठ बजे, मैं कराची जाने वाले पी० आई० ए० के जहाज़ पर बैठने के लिए जा रहा हूं। मेरी बीवी और दोनों बच्चे 'विज़िटर्ज़ गैलरी' में खड़े हैं। मैं रन-वे पर उनके बहुत पास से गुज़रा और अपने छोटे बेटे को आवाज़ दी। उसने आवाज़ सुनी, लेकिन एयर-पोर्ट की रोशनियों में उसे दिशा का पता न चला। मैं जाते-जाते न जाने क्यों रो पड़ा। शायद लाहौर एयर-पोर्ट की मिट्टी पर गिरे हुए मेरे आंसू अब भी ताज़ा हों!

मैं बीवी से झूठ बोलकर निकला था। अगर मैं उसे बता देता कि मैं काबुल, मुर्तज़ा भुट्टो से मिलने जा रहा हूं, तो वह मुझे कभी नहीं जाने देती। मैंने उससे

कहा था "टैलिविज़न और रेडियो के दरवाज़े मेरे लिए बंद हो गए हैं। हमारे अख़बार बंद हो गए हैं। यहां हम अपनी ज़िंदगी का वह मेयार बाकी नहीं रख सकते, जो पहले था। मैं यूरोप जाऊंगा और नौकरी करूंगा।"

काबुल में मुझे नौकरी मिल गई थी। शायद इसलिए मेरी बीवी ने मुझे ख़ुशी से विदा किया था। मेरा यक़ीन है कि जिस तरह मर्द मौला का आरिफ़ होता है, इसी तरह औरत दुनिया की आरिफ़ होती है। उस आरिफ़-ए-दुनिया से बिछड़कर मैं कुछ महीने अपने आप में नहीं रहा था। शायद इसलिए कि मशीनी तौर पर शौहर होना साधारण काम है, पर वह वजूद जो अपने अस्तित्व की पूर्णता का एक अंग हो, छोड़ देना बहुत कठिन है।

शायद मुझे अपनी बीवी और बच्चों से वैसा प्यार नहीं जैसा किसी दूसरे से होता है। वह मेरे अपने अस्तित्व का ऐक्स्टैनशन हैं। उन्हें याद करना अपने आपको जगाना है। उनके बीच रहना अपने आपकी ओर वापस आना है।

अब कभी-कभी इश्क़ का नाम भी बासी लगता है। इसलिए चुप रहना, अपने आपके अंदर—अपने आपको तरतीब देना, और आंखें बंद करके बीवी बच्चों के पास पहुंच जाना, और जब जी करे चक्कर लगा आना···

प्रत्यक्ष की यह दूरी व्यर्थ है, सुपने जैसी है, हक़ीक़त से बहुत दूर। मैंने इसे शेरों में भी बयान किया है। जुदाई के पहले दिनों का एक शेर है—

भीगकर बारिश में वह छत पर अकेली रह गई
उसका सूरज छीनकर बादल मगर रोए बहुत···

जुदाई के दिनों का एक दूसरा शेर है—

रोशनी भर याद की ख़ुशबू जला रखता हूं मैं
फ़ासलों के ख़्वाब फ़रदा पर उठा रखता हूं मैं···

और मुहब्बत की बातें, आपके अपने लफ़्ज़ों में "कुछ ऐसी बातें होती हैं जिन्हें लफ़्ज़ों की सज़ा नहीं देनी चाहिए।"

? : 'स्वयं' की पहचान सिर्फ़ अपने अंतर से पाई जा सकती है, आपने पाई। लेकिन कभी बाहर उसका संकेत देखा? कोई ऐसा इन्सान जिसने ख़ामोशी की ज़बान में आपकी ख़ामोशी से मुकाबला किया हो?

म : हिंदू समाज बहुत ज़ाहिर-परस्त है। हर चीज़ को नुमाइश बना देता है। यहां तक कि 'रब्ब' को भी। असल में शिव का तांडव रूह के अलग-अलग मरहले थे। क़ुरान वह मुक़ामात है जहां से रसूले-करीम गुज़रे। आज मूर्तियों से लेकर सादिक़ीन की क़ुरान की खताती तक सब कुछ एक पंक्ति में खड़ा हुआ है। हर तरफ़ नुमाइश का शोर है।

मुझे आत्मा की यात्रा शुरू करने के लिए बहुत मुश्किल पेश आई। क़ुरान में एक सूरत है—तग़ाबन, उसमें लिखा है कि आप में से कुछ लोगों के बीवी बच्चे उनके दुश्मन हैं। यह दुश्मनी मेरी राह में भी आई। लेकिन जल्दी ही मेरी साबित-

क़दमी का शिकार हो गई। रसूले-करीम ने कहा है कि ग़रीबी इन्सान को काफ़िर बनाने की तरफ़ ले जाती है। जिस समय तक मनुष्य रोटी कपड़े और मकान के चक्कर में रहता है, रूह का सफ़र शुरू ही नहीं हो सकता। आदमी ज़ाहिर-परस्त और सतही होता है। भुट्टो एक ऐसा आदमी था जिसने यह भेद पा लिया था कि ईमान का छटा रूकन रोटी है। यह रूकन हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया ने बताया था। भुट्टो की सियासत में एक ऐसी आरिफ़ाना खामोशी थी जो अंत में उसे ज़िंदगी के बेहद खूबसूरत जश्न की तरफ़ ले गई। वह जश्न था सूली। उस सूली पर लटके हुए आदमी की खामोशी मेरे हर सवाल का जवाब है···

? : दोस्त ! आपके और आपके सियासी हमख़यालों के आंसू जिस मिट्टी में बोए गए हैं, क्या उस मिट्टी में किसी दिन वह फूल खिलेंगे जिनमें से इन्सानी मन की महक आएगी ?

म : मेरा ख़याल है कि आपका यह सवाल एक शायर की खूबसूरत उम्मीद जैसा है। हम ज़वाल के ज़माने के लोग हैं और हमारी नस्ल की आखरी मंज़िल मुकम्मल तबाही है। हम ज़ालिम भी हैं और ज़ाहिल भी। अरबों ने ज़ुल्म की व्याख्या बड़े वैज्ञानिक ढंग से की है, कहते हैं "चीज़ों को उनकी असली जगह से हटाकर ग़लत जगह रखना ज़ुल्म है।" इस ज़ुल्म को प्रचलित और उचित कहना जहालत है। हमने ज़ुल्म को बिछाया और जहालत को ओढ़ा। हम बर्बाद हुए और हो रहे हैं। हमने एक इख़लाक़ी निज़ाम ईजाद किया है, बद-इख़लाकों की इख़लाक़ियत। हमने इस निज़ाम को ठीक साबित करने के लिए कई और बुरे नज़रियात पैदा किए और यह नज़रियात हमें खा रहे हैं। और मौत के सिवा हमें कोई अपने असल की तरफ़ वापस नहीं ला सकता।

मां और मौत दो समानार्थक शब्द हैं। क़ुरान कहता है—"यह सब कुछ अल्लाह की तरफ़ से है, और उसी की तरफ़ लौट जाएगा"—हम मां की कोख में इसी तरह उतरे थे जैसे सीप में मोती। और मां की तरफ़ उसी तरह लौट जाएंगे, जैसे अंधेरे में किरन। हमारी मुक्ति का एक ही तरीका है—इस निज़ाम से आज़ादी, मुकम्मल स्वतंत्रता।

? : इस्लामिक इतिहास में एक कहानी कही जाती है कि बल्ख़ का शाहज़ादा इब्राहीम जब काबे के दीदार के लिए गया तो काबा वहां नहीं था। इब्राहीम परेशान था कि एक आसमानी आवाज आई "काबा आज एक औरत के दीदार के लिए गया हुआ है"—यह सूफ़ी औरत राबिया थी।—मैं इस कहानी के चमत्कारी पहलू की बात नहीं करती, सिर्फ़ यह कि काबे की पाक नज़र में अगर मर्द और औरत का कोई फ़र्क़ नहीं था, तो फिर इस्लामी दुनिया में औरत को एक नामुराद नगण्य हस्ती क्यों माना जाता है ?

म : अभी-अभी मैं ज़ुल्म और जहालत का ज़िक्र कर रहा था। इसी ज़ुल्म की ताक़त के नीचे औरत को उठाकर ग़लत जगह पर रख दिया गया। लाहौर का एक सूफ़ी

मेरा यार था, मैंने उससे पूछा "बाबा! औरत क्या होती है?" उसने कहा "अपनी हाजत लेकर दूसरे के पास जाना—औरत"—उसे मैं इस तरह कहूंगा "अपना सुख अपने बाहर खोजना"···

सार्त्र को अपने बाहर दूसरा आदमी नर्क दिखाई दिया। सिम्मन और सार्त्र दो आदमी थे। इल्मे-इलाही में क्योंकि औरत, मर्द में से पैदा हुई है, इसलिए उसका नम्बर दो है। लेकिन उसे अख़्तियार दिया गया है कि वह अपनी तकमील करके बराबर आ जाए। और मुआशरे में जो लोग ग़लत नज़रियात फैला रहे हैं, उन्हें सज़ा मिलनी चाहिए कि उन्होंने फ़ितरी औरत को समाजी औरत बनाया।

फ़िरती औरत और समाजी औरत में क्या फ़र्क़ है? फ़ितरी औरत फ़ितरत का दरवाज़ा है। औरत को अख़्तियार दिया कि वह प्रकृति के दरवाज़े खोले और बंद करे। मर्द इस अख़्तियार से वंचित है। उसने अपनी वंचना का औरत से प्रतिशोध लिया—अपने नज़रियात का खोल, अपनी महानता का खोल। लेकिन अगर ग़ौर से देखा जाए तो मर्द का यह रवैया वास्तव में प्रकृति को कीलने की चेष्टा का इज़हार है। औरत प्रकृति का रूप है। और मर्द प्रकृति की शक्ति।

आपको एक खूबसूरत बात बताऊं—औरत शिव है, और मर्द शिव-शक्ति।

? : आपके इस्लाम में इलका, इख़लाह, इरका, अरबिया, हमलाता, सजीन और अजीबिया सात पाताल माने गए हैं। लेकिन मन के इन पातालों की थाह किसने पाई है? चाहूंगी कि सातवां सवाल अपने ही मन के किसी पाताल में से निकाल कर सामने रख लें, और जितना कुछ जवाब मिलता है, कहें!

म : हम 'इल्मों बस करीं ओ यार' के लोग हैं। बहुत-से ऋषियों मुनियों और सूफ़ियों ने इन्सान के अंदर जिन चक्रों और मंडलों के नाम गिनवाए हैं, उनके बारे में कुछ लोग चुप भी रहे हैं। जैसे बुद्ध ने किसी चक्र का ज़िक्र नहीं किया। वह या तो चुप रहा है, या यह कि इन चक्रों का कोई अस्तित्व ही नहीं है। क्योंकि यह चक्र वह प्लैनेट हैं, जो सृष्टि के अनुरूप ही इन्सान के अंदर हैं। बुद्ध और महावीर अन्य पैग़म्बरों से हटकर, ख़ुदा का नाम ही नहीं लेते। बुद्ध कहता है—निर्वाण। महावीर कहता है—मोक्ष।

और अगर इन लोगों के अनुभव को ओढ़ने या बिछाने की कोशिश करें तो यह संभव ही नहीं है। अपना अनुभव अपना होगा, समय और धर्म के जलवायु के अनुसार।

मेरे सूफ़ी यार ने मुझसे कहा था कि आजकल क़ुरान के अक्षर वापस ले लिए गए हैं। बात का नहीं, चुप का समय है। चुप रहकर अल्लाह का फ़ज़ल तलाश करें, नाम न खोजें। खोजेंगे, अपनी तजवीज़ से, तो मशक़्क़त में फंस जाएंगे।

शब्द तजवीज़ है। तजवीज़ मशक़्क़त पैदा करती है। अर्थ में रहेंगे तो मुक्त हो जाएंगे। अगर वापस शब्द में आने की कोशिश की तो गए···

डाक्टर लल्लन प्रसाद सिंह से सात सवाल

? : लल्लन प्रसाद जी ! आप अपनी किताब 'तंत्र' में वेद को फिलासफ़ी और तंत्र को साइन्स मानते हैं । आज पश्चिमी देशों में तंत्र-शक्ति की वैज्ञानिक खोज हो रही है, सायकाट्रॉनिक जेनरेटर भी बनाए जा रहे हैं। क्या यह शक्ति इस पकड़ में आ सकेगी ?

ल : भौतिक विज्ञान के मुताबिक पूरी दुनिया वेव्ज़ और वाइब्रेशंज का संग्रह है। और भौतिक विज्ञान ने कई तरीक़ों से इन तरंगों पर काबू पा कर चमत्कारी उपलब्धियों से हमें चकित कर दिया है। दूसरी ओर तंत्र, जिसे हम चेतना-विज्ञान कहते हैं, वह इन्सान की चेतना पर क़ाबू पा कर उसे निर्वाण या ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति करवाता है। यह निर्वाण-ब्रह्म-ज्ञान इन्सान की चेतना का ही पूर्ण ज्ञान है। चेतना एक अमूर्त्त सत्ता है, और इस पर क़ाबू पाने के जो भी तरीक़े होंगे, वह अमूर्त ही होंगे। भौतिक विज्ञान और चेतना-विज्ञान, दोनों के क्षेत्र, यहां तक कि खोज के रास्ते भी अलग-अलग हैं···

भारतीय संस्कृति की यह सबसे बड़ी प्राप्ति है कि उसने पुरातन काल से तंत्र-साधना और योग-साधना के द्वारा उसे चेतना- विज्ञान का रूप देने का प्रयत्न किया। और यही कारण है कि यहां के ऋषि-महर्षि अपनी साधना के बल पर अलौकिक शक्तियों का समय-समय पर दर्शन करवाते रहे। इसके अनेक ऐतिहासिक हवाले मौजूद हैं। इन ऋषियों-महर्षियों की अलौकिक शक्तियों की वैज्ञानिक व्याख्या करने का और उन्हें अच्छी तरह समझने का एक गहरा जतन विशेष रूप से पश्चिमी देशों में हो रहा है। सायकाट्रॉनिक उसी प्रयास की एक कड़ी है। लेकिन मेरी दृष्टि में इस चेतना-शक्ति को जिसे परा-शक्ति कहा गया है, और जिसका विकास सिद्ध करने के लिए तंत्र-शास्त्र का आविष्कार हुआ था, हमारे ऋषियों ने उसे विज्ञान की सूरत दी थी। लेकिन उसे चेतना स्तर पर ही पकड़ा जा सकता है। जिस प्रकार रेडियो वेव्ज़ को केवल उसी प्रकार के यन्त्रों द्वारा पकड़ा जा सकता है—उसी प्रकार चेतना वेव्ज़ को चेतना-वेव्ज़ के ज़रिये ही पकड़ा जा सकता है—इसके लिए साधना की ज़रूरत है।

तंत्र शास्त्र के अनुसार उस परा-शक्ति का या चिद्-शक्ति का विकास,

कुंडलिनी शक्ति को जगा कर ही किया जा सकता है···

तंत्र की मूल बुनियाद कुंडलिनी शक्ति का जागरण है···

और कुंडलिनी शक्ति के जागरण के लिए मंत्र-साधना और यंत्र-साधना की ज़रूरत होती है। वैसे तो हमारी वर्णमाला के पचास अक्षर इन शक्तियों के बीज अक्षर हैं। जिस प्रकार भौतिक विज्ञान की अलग-अलग शक्तियों के लिए अलग-अलग प्रकार के यंत्रों का विकास होता है, तकनीकी तौर पर—उसी तरह इन्सान की अलग-अलग शक्तियों के जागरण के लिए अलग-अलग तरह के मंत्रों की ज़रूरत होती है। ऐसी मंत्र साधना से ही कुंडलिनी शक्ति का जागरण होता है। और उस जागरण से जिन अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति होती है—जिन्हें ऑफल्टिज़्म कहते हैं—वह कभी-कभी साधक को गुमराह भी कर देती हैं क्योंकि साधना का मक़सद उन परा-शक्तियों का जागरण करके, निर्वाण प्राप्त करना है, और जो इस मकसद की प्राप्ति को जीवन क। सबसे बड़ा मक़सद नहीं मानता, वह उन अलौकिक शक्तियों की नुमाइश में अपना रूहानी मक़सद बिसार देता है। इसीलिए बहुत से साधक गुमराह हो जाते हैं।

? : तंत्र रहस्यमयी शक्तियों के ग़लत इस्तेमाल की सख्त मनाही करता है। लेकिन अगर किसी तरह इनका इस्तेमाल बहुत बड़ी राजनीतिक शक्तियों के हाथ में आ गया, तो यह अपने ढंग की किसी भयानक जंग की बुनियाद नहीं बन जाएगा ?

ल : जैसे विज्ञान के बारे में कहा जा सकता है कि वह अपने आप में न नैतिक है न अनैतिक, वह केवल अपने आप में प्रकाशित है। वैसे ही चेतना विज्ञान है। लेकिन चेतना विज्ञान में उससे मौलिक अलगाव है। यह बात कुछ दूर तक सही है कि यह शक्तियां अगर राजनीतिज्ञों के हाथ से में आ जाएं तो वह इनका ग़लत इस्तेमाल करके इन्सान और समाज को खड्डों-खाइयों में फेंक सकते हैं। लेकिन इसमें एक बहुत बड़ी 'सेविंग ग्रेस' यह है कि वह इन्सान जो धर्म का पूरी तरह पालन नहीं करता, उसे यह शक्तियां पूरी तरह प्राप्त नहीं होतीं।

नैतिकता, धार्मिकता, आध्यात्मिकता, ऐसी शक्तियों के जागरण के लिए, उनकी प्राप्ति के लिए—एक बुनियादी शर्त है। इस बुनियादी शर्त का पालन किये बिना इन अलौकिक शक्तियों की पूर्ण प्राप्ति किसी को नहीं होती। हां, छोटी-मोटी अलौकिक शक्तियां ज़रूर कुछ लोगों को प्राप्त हुई हैं, और उनका कुछ लोगों ने सियासी इस्तेमाल भी किया है। लेकिन उन्हें अपने मक़सद की पूर्ति में कामयाबी इसलिए नहीं मिली कि वह इसकी बुनियादी शर्त—यानी नैतिकता आध्यात्मिकता का पालन नहीं कर रहे थे।

? : ज़मीनदोज़ तत्त्वों की खोज करने वाले पच्छिमी विद्वान् आज यह मानते है कि इन तत्त्वों वाले चुम्बकीय-क्षेत्र प्राचीन इन्सान की पहचान में आ गए थे। किसी भी मंदिर की सूरत में जो कुछ निर्माण किया गया, वह धरती के चुम्बकीय क्षेत्रों को पहचान कर किया गया। यह ज़मीनदोज़ तत्त्वों और ख़िलाई शक्तियों में एक

तवाज़ुन पैदा करने के लिए था। और यही इन्सान के हर मज़हब की बुनियाद थी। भारतीय चिन्तन इस बारे में क्या कहता है ?

ल : भारतीय चिन्तन के अनुसार देश, काल और पात्र के चुनाव में बहुत सावधानी बरतने के लिए कहा गया है। मंदिरों या घरों के बनाने के लिए स्थान का चुनाव करने के वास्ते हमारे यहां एक विशेष तरह के ज्योतिष का विकास हुआ था। पुरातन काल में जब किसी राजा को राज-महल बनाना होता था, या क़िला, तो ज्योतिष के द्वारा उस स्थान के इस्तेमाल के आधार पर ही शिला रखने के अनेक हवाले मिलते हैं। लेकिन धीरे-धीरे इस ज्योतिष विज्ञान ने अंध-विश्वास का रूप धारण कर लिया, तो इसके नाम पर कच्चे-पक्के ज्योतिषियों ने लोगों का एक्सप्लायटेशन शुरू किया—तब यह विद्या तिरस्कृत होकर धीरे-धीरे लोप हो गई···

हर स्थान की अपनी एक विशेषता होती है। उसकी विशेषता पर ही उसका उपयोग निर्भर करता है। और यही भूमि के चुनाव के निर्णय के लिए निश्चयात्मक तत्त्व हैं···

? : चीन की हज़ारों बरसों से चली आ रही ड्रैगन-पूजा का संबंध ज़मीनदोज़ तत्त्वों से माना जाता है। उन तत्त्वों की आकर्षण-शक्ति क्योंकि सर्प-गति से चलती है, इसलिए सांप से उसका सीधा संबंध माना गया है। सांप की धड़कन का अर्थ है धरती की मैगनेटिक करंट। पर्वत—उसी शक्ति का गुच्छा होकर सोया हुआ आकार है, और दरिया, उसी शक्ति का प्रवाह। भारत में सर्प-पूजन का आधार कौन-सी मान्यता में है ?

ल : भारतीय चिन्तन में सर्प कुंडलिनी शक्ति का प्रतीक है। शाक्त दर्शन के अनुसार हर मनुष्य में कई चक्र होते हैं जो उसके अन्दर पंचभौतिक तत्त्वों का नियंत्रण करते हैं। और उनके आधार पर ही उनके रंग, और उनके बीज का निर्णय किया गया है। जैसे मूलाधार भौतिक तत्त्वों का, स्वाधिष्ठान चक्र जल तत्त्व का, मनीपुर अग्नि तत्त्व का, अनाहत वायु तत्त्व का और विशुद्ध आकाश तत्त्व का नियंत्रण करता है। इनके अनुसार मूलाधार चक्र में, जिसे तंत्र शास्त्र में स्वयंभू लिंग कहते हैं, कुंडलिनी शक्ति जो सर्प-आकार मानी जाती है, साढ़े तीन गिरह गांठ में, ऐंटी-क्लाकवाइज़, मुंख में पूंछ को डाले सोयी रहती है।

संपूर्ण तंत्र साधना इस सोई हुई परा-शक्ति को, यानी आध्यात्मिक शक्ति को जाग्रत करने की ही परा-विद्या है। इसके जागरण से ही आध्यात्मिक अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति होती है।

जब यह शक्ति मूलाधार से ऊपर उठकर अलग-अलग चक्रों से होती हुई आज्ञा चक्र में पहुंचती है तो जो ज्ञान प्राप्त होता है उसे योग में सविकल्प समाधि कहते हैं। और जब वह सहस्रार चक्र में पहुंचती है, तो उससे जो ज्ञान प्राप्त होता है उसे निर्विकल्प समाधि कहते हैं। इसी को पूर्ण ब्रह्म ज्ञान यानी आत्म-ज्ञान कहा

जाता है।

हमारी परा-शक्ति सर्प-आकर है, इसलिए सर्प हमारी संस्कृति का एक अनमोल खज़ाना है।

तंत्र या आगम शास्त्र के आदि गुरु शिव की मूर्त्तियों में हम देखते हैं कि उनके गले में सर्प लिपटा हुआ है, और यह प्रतीक हमारी संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को दर्शाता है।

सर्प-पूजा या नाग-पूजा के मूल में हमारी आध्यात्मिक रहस्यवादी परम्पराएं गूंजती हैं। शायद चीन संस्कृति के मूल में भी यही बात रही होगी। हमारे तंत्र शास्त्र के अनुसार महर्षि वशिष्ठ ने चीनी तांत्रिकों से ही चीनाचार नामक तांत्रिक विधि सीखकर उसका प्रचार भारत में किया था।

चीनी और भारतीय संस्कृति के आदान-प्रदान का इतिहास बहुत ही प्राचीन और लंबा है। संभव है कि चीन में ड्रेगन-पूजा, जो शायद मैक्सीको की संस्कृति में भी है, किसी समय सांस्कृतिक आदान-प्रदान के माध्यम से ही वहां पहुंच गई हो। लेकिन एक बात सच है कि सर्प हमारे कुंडलिनी शक्ति का प्रतीक है। और यह अनार्य संस्कृति की प्राप्ति होने के कारण, सबसे प्राचीन है और यही कालान्तर में नाग पूजा आदि कई रूपों में, कई संस्कृतियों का प्रतीक बन गया, धार्मिक भी, सामाजिक भी, और नैतिक भी।

? : मैं मास्को में हुई 'पैरासाइकालोजी कान्फ़रेंस' की रिपोर्ट पढ़ रही थी जिसमें 'पिरामिड' को 'कॉस्मिक जैनरेटर' कहा गया है। तंत्र साधना में भी रहस्यमयी-डायग्राम की बड़ी अहमियत है। और शायद लक्ष्मण-रेखा का संबंध भी उससे जुड़ता है। इसके बारे में कुछ विस्तार से बताएंगे?

ल : मैंने मास्को में हुई पैरासाइकालोजी कान्फ़रेंस की रिपोर्ट नहीं पढ़ी है, लेकिन मैं इस कान्फ़रेंस के प्रबंधकों को बहुत-बहुत बधाई देना चाहता हूं कि उन्होंने इन्सानी चेतना के अनबूझ पहलू को जानने-बूझने का एक वैज्ञानिक जतन किया है।

हमारे तंत्र-वेद के अनुसार इन्सान ही परमात्मा है। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि इन्सान अपने आपको कभी इंद्रियों से, कभी मन से, कभी रुचियों से, और कभी शरीर से आइडेंटिफ़ाइ करके अपने आपको बंधन में महसूस करता है। इन्सान न तो मन है, न इंद्रियां, न रुचियां, न महज़ जिस्म। वह चेतना का पुंज है। लेकिन उसे उसकी रिअलाइज़ेशन नहीं हो रही है। जब उसे इसका ज्ञान होता है तब वह अपने आपको ईश्वर, ब्रह्म, या चेतना से आइडेंटिफ़ाइ करता है।

इन्सान और इस पूर्ण ब्रह्म-ज्ञान के बीच में चेतना या मन की कई तहें हैं। उन्हीं तहों को भारतीय मनोविज्ञान कोष कहता है। जैसे काममय कोष, मनोमय कोष, अति मानस कोष, विज्ञानमय कोष, हिरण्यमय कोष। यह कोष हमारी मानसिकता या चेतना के अलग-अलग स्तर दर्शाते हैं।

तंत्र साधना या योग साधना के ज़रिये उन अलग-अलग कोषों, या चेतना

के अलग-अलव स्तरों का चीरन किया जाता है, जिसे चक्र-चीरन कहते हैं। इन कोषों को चीरने का अर्थ है—चेतना की अलग-अलग ऊंचाइयों को पार करना। और इन ऊंचाइयों को पार करने के क्रम में इन्सान को जो पारलौकिक शक्तियों का ज्ञान प्राप्त होता है, उसी का अध्ययन परा-मनोविज्ञान या पैरा-साइकालोजी कहलाता है।

परा-मनोविज्ञान के अध्ययन या प्रयोग के लिए भौतिक प्रयोगशाला से ज़्यादा मानसिक प्रयोगशाला की ज़रूरत है। यह ठीक है कि इसके सच का वैरिफ़िकेशन भौतिक विज्ञान के सच के वैरिफ़िकेशन जैसा हो सकता है, लेकिन दोनों में गुणात्मक फ़र्क़ है। इसके सच की प्राप्ति के लिए इन्सान को अपनी मानसिक लैबारेटरी में अपने ही मन के ज़रिये अपने ही मन को चेतना के अलग-अलग रहस्य समझने के लिए, उसके मुताबिक ढालना होगा। तंत्र-योग साधना एक दृष्टिकोण से पैरासाइकालोजी की ही ऐप्लाईड फ़ॉर्म है। लेकिन उसका मक़सद चेतना का पूर्ण विकास करके 'स्वयं' को ब्रह्म के रूप में स्थापित करना है। और इस दृष्टि से यह पैरा-साइकालोजी तक महदूद न रहकर इससे परे चला जाता है, जहां उसे चेतना या चिद्-शक्ति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो सके। हां इस संबंध में कोई उच्च चेतना-शक्ति प्राप्त महर्षि किसी और को भी शक्तिपात के ज़रिये इस परा-मनोवैज्ञानिक रहस्यमय संसार की झलक दिखा देता है, और उसके ज़रिये उसके पूरे जीवन-दर्शन को बदल देता है, जैसे रामकृष्ण ने विवेकानंद का जीवन-दर्शन बदल दिया था।

? : देवी-देवताओं के आकार, खिलाई तत्त्वों के आकारों पर आधारित हैं या यह इन्सान की महज़ तापमयी कल्पना है? उसकी फ़ीवरिश इमैजिनेशन? साथ ही इन्सान की खिलाई याददाश्त के बारे में कुछ विस्तार से बताइये, कास्मिक मेमोरी के बारे में··· Cosmic memory

ल : देवी-देवताओं के आकार बहुत हद तक इन्सान की तापमयी कल्पना है। इन्सान की वह इच्छाएं जो वह पूरी नहीं कर सकता, उनकी तसल्ली के लिए, इस तरह के स्वर्ग की, फ़रिश्तों की और देवी-देवताओं की कल्पना की गई है। ऐसी कल्पनाएं हर संस्कृति में मिलती हैं, क्योंकि इन्सान बुनियादी तौर पर एक जैसा ही है। लेकिन कुछ संगीत शास्त्रों के विद्वान् रागों की देवियों के आकार, खिलाई तत्त्वों के आकारों के अनुसार मानते हैं। और इन्सान अपनी साधना के ज़रिये से देव-दर्शन की बात करते हैं। लेकिन जब मूल तत्त्व एक अमूर्त, निर्गुण, निर्विकार, ज्ञान-सत्ता है, तब यह अलग-अलग देवी-देवताओं का दर्शन अपने आप में एक विरोधाभास है। देव-दर्शन को तत्त्व मीमांसा के दृष्टिकोण से नहीं, इसे मनोवैज्ञानिक या धार्मिक दृष्टिकोण से सोचा जा सकता है। मनोवैज्ञानिक या धार्मिक दृष्टिकोण से इस परा-मनोवैज्ञानिक तथ्य के विश्लेषण पर मुझे ऐसा लगता है कि इन्सान अपनी ही चेतना का विस्तार करके, साधना की उच्च अवस्था में अलग-

अलग देवी-देवताओं के आकार का दर्शन करता है···

तंत्र, योग, या अलग-अलग भारतीय दर्शनों में सर्वज्ञता की बात की गई है। जैन दर्शन के मुताबिक रूह में अनन्त ज्ञान की शक्ति है, और वह उसे विकसित करके सर्वज्ञ हो सकता है। जिस कोष की मैंने पहले बात की है, उसमें अतिमानस विज्ञानमय और हिरण्यमय कोष को कारण-मन कहा जाता है। कारण-मन में सर्वज्ञता के वस्फ़ छिपे हुए हैं, और इसका भेदन करके साधक सर्वज्ञ हो सकता है। यहां मैं डिटर्मिनिज़्म और उसके दार्शनिक प्रश्नों पर, विस्तार में गए बिना, इतना ही कहूंगा कि इन्सान में खिलाई याददाश्त की पूरी संभावना है।

और जिसे जुंग ने कलैक्टिव अनकान्शस, या प्रिमिटिव साइकी का नाम दिया है, उसे तंत्र या योग ने कारण-मन कहा है। और यह कारण-मन फ्रायड के अनकान्शस या जुंग के कलैक्टिव अनकान्शस से अलग इन्सान के मानसिक या चेतन जीवन का पूरा इज़हार कर देता है। और उसमें कास्मिक मैमोरी के साथ-साथ और भी कई रहस्यमय तत्त्व मिले हुए हैं, जिसका प्रगटाव आध्यात्मिक साधना या ज्ञान के ज़रिये इन्सान लगातार करता रहता है।

? : तंत्र शक्ति के किसी ज़ाती तजुर्बे की बात करना समुद्र में अलोप हुई द्वारावती की बात करने जैसा है। इसलिए यह सातवां सवाल आप के हवाले है आप खुद उस द्वारावती की खोज करें और खुद ही उसके जाहो-जलाल का तर्क खोजकर बताएं!

ल : अमृता जी! आपका पत्र मिला था तो जहां बहुत खुशी हुई कि आप हिन्दुस्तान के कुछ चुने हुए कलाकारों और चिन्तनशील लोगों से सात सवाल पूछ रही हैं, वहां मैं उस सूची में अपने जैसे खाकसार को देखकर बहुत घबरा गया, और मैं आपसे मिलने के लिए छह महीने दिल्ली नहीं आया। अब यह सोचकर आया हूं कि अब तक आपको यह बात भूल गई होगी। मैं बहुत साधारण इन्सान हूं, और मैंने तंत्र की साधना बहुत मामूली की है, जिसके खट्टे-मीठे अनुभव मुझे प्राप्त हुए हैं। इस आधार पर कोई नतीजा निकलना बहुत कठिन है। पर साधना अपने आप में बहुत खतरनाक बात है, जिसे तलवार की धार पर चलने के बराबर कहा जा सकता है।—और उसमें जब मैंने बहुत से तांत्रिकों को निकट से देखा, तो देखा कि उनकी जिंदगी आम इन्सान से भी नीची है···कइयों ने इसे व्यापार भी बनाया हुआ है···

मेरी तंत्र-साधना, मेरी तंत्र-जिज्ञासा, अपने आपको सही रूप में पहचानने का एक रास्ता है। एक वैज्ञानिक रास्ता। और मैं चंडीदास के इस सत्य को मानता हूं—"साबार ऊपुरे मानुष भाई, ताहार ऊपुरे नाई"—और जो विद्या इस सत्य का दर्शन कराती हो, वही परा-विद्या है, वही परा-शक्ति है, और वही जीवन की उपलब्धि है।

जब मैं पहले पहल तंत्र साधना में दीक्षित हुआ था, मुझे जमालपुर की दो

पहाड़ियों के बीच एक घाटी में, जिसे मौत की घाटी कहते हैं, एक इमली के पेड़ के नीचे रात के बारह बजे के बाद अकेले साधना के लिए जाना होता था।

और जैसे-जैसे दिन ढलता था, रात निकट आने वाली हो जाती थी, मेरे दिल की धड़कन बढ़ने लगती थी। और जब मैं सचमुच साधना के लिए रात के करीब साढ़े बारह बजे घर से चलता था तो मुझे लगता था कि मैं कल का सूरज नहीं देख सकूंगा। मैं वहां पहुंचता—तो रास्ते में पहाड़ी के पास मुझे देखकर कई बार वहां के लोहे की ज़ंजीरों के चोर भाग जाते थे···यह सिलसिला कई दिन तक चलता रहा···

लेकिन जब मैं साधना करके लौटता था, तब मैं अपने आपको एक बिलकुल दूसरा इन्सान समझता था। मुझे लगता था—मेरे अन्दर रोज़ कोई नया इन्सान पैदा हो रहा है। यह कुकनूस की तरह अपनी ही आग में भस्म होने वाली हालत थी, और फिर अपनी ही राख में से नया जन्म लेने जैसी हालत।

एक दिन जब मैं साधना के लिए बैठा हुआ था, तो मेरे निकट, कोई दस गज़ की दूरी पर, एक शेर आ गया। उस समय मेरी हालत बिलकुल और ही थी। मैं इतनी रूहानियत में डूबा हुआ था कि मुझे कोई डर-भय नहीं लगा। मैंने सहज तौर पर उस शेर को डांटा, और वह भाग गया।

उस दिन के बाद मेरा नज़रिया बदल गया। और मुझे अमरता का गहरा अहसास हुआ, जिसे मैं बाद में दार्शनिक विश्लेषण करने पर अपनी चेतना का विस्तार मानता हूं। साधना के क्रम में ही मुझे वेदान्त के महावाक्य 'मैं ही ब्रह्म हूं' की अनुभूति हुई। मेरा दृष्टिकोण बदल गया। तब से मैं यही मानता हूं कि हिन्दू धर्म, या कोई भी धर्म हो, उसके बुनियादी तत्त्व को बौद्धिकता के स्तर पर नहीं समझा जा सकता। उसे केवल अनुभव के धरातल पर ही समझा जा सकता है।

धर्म जीवन की एक कला है। धर्म एक है। और तंत्र इस सत्य की अनुभूति कराने का एक वैज्ञानिक मार्ग है···'

प्राणनाथ मागो से सात सवाल

? : मागो साहब ! जिस तरह बिंदु हमारे प्राचीन फ़लसफ़े में मूल सत्ता का रूप है, जो अपने ही कंपन के रूप में अपना विस्तार देखता है, बिंदु का कंपन ही बहिर्मुखी रेखा बनता है, क्या आप चित्रकला में बिंदु और रेखा का संबंध इस प्राचीन फ़लसफ़े से कहीं जुड़ा हुआ महसूस करते हैं ?

मा : बिंदु का रिश्ता विस्तार से, और विस्तार का रिश्ता बिंदु से ही 'स्वयं' का रिश्ता ब्रह्मांड से और ब्रह्मांड का रिश्ता 'स्वयं' से है। एक कलाकार के लिए उसकी कला सिर्फ़ उस रिश्ते का माध्यम है। और बिंदु, आकार की ज़बान का अलिफ़ है···

सिर्फ़ सौ या डेढ़ सौ साल से लिखत रूप में इसका विश्लेषण होने लगा है, पर आकार तो सदियों से रूप धारण करते आए हैं। आज वैस्सली कैन्डिन्स्की अपनी किताब 'प्वाएंट ऐंड लाइन टु प्लेन' में लिखता है 'दि अल्टिमेट ऐंड मोस्ट सिंगुलर यूनियन आफ़ साइलैन्स ऐंड स्पीच'। हमारे फ़लसफ़े के अनुसार वही बिंदु अस्तित्व और अनस्तित्व के बीच की अवस्था है।

आगे कैन्डिन्स्की ऊर्ध्व रेखा (वर्टिकल लाइन) को स्थायित्व (स्टेबिलिटी) कहता है। और हम उसी ख़याल को विष्णु के रूप में पेश करते हैं। विष्णु के आकार की रेखा ही कैन्डिस्की की वह रेखा है जो स्थायित्व का प्रतीक है। और ग़ौर करने की बात यह है कि विष्णु जब शेषनाग, पर लेटा हुआ है, ब्रह्म की प्रतीक्षा में, तब उसका वह रूप नहीं है। उसका यह आकार सिर्फ़ तब बनता है जब वह स्टेबिलिटी का रूप हो जाता है। दुनिया का पालनहार .

इसी तरह कोणिक रेखा (ऐंगुलर लाइन) कैन्डिन्स्की के लफ़्ज़ों में बहुत शक्तिशाली है। डायनामिक। वही कोणिक रेखा हमारी मूर्तिकला में दुर्गा के रूप में अंकित है। उसकी आठ भुजाएं, और हाथों में लिया हुआ बरछा, शक्ति का बहुत ख़ूबसूरत प्रकटाव है।

यही क्रियाशील हरकत (ऐक्टिव मूवमेंट) जब तीव्र हरकत (वायलेंट मुवमेंट) बनती है, उसका प्रकटाव चीन के ड्रैगन आकार में सबसे ज़्यादा स्पष्ट है। ड्रैगन भी बिंदु की वेगमयी हरकत का प्रतीक है। और वही हरकत हमारे शिव के नटराज रूप में है। उसके तांडव नृत्य में। तब शक्ति चक्रवात का रूप धारण करती है।

बिंदु का कंपन और हर रेखा की हरकत, बहिर्मुखी बनने से पहले चित्रकार के अन्दर वह सारे रूप धारण करती है जो बहिर्मुखी बनने होते हैं। और वही अंतर्मुखी अनुभव जब कैनवस पर उतरते हैं, उनका बहिर्मुखी रूप अपने दर्शक से वह रिश्ता कायम करता है, जिससे अनुभव का दायरा पूर्ण होता है।

बिंदु का विस्तार धारण करना, और विस्तार का बिंदु में सिमट जाना, उसका सबसे उत्तम दृश्यमयी चित्रण, हमें श्री यन्त्र में मिलता है। उसकी हर रेखा अर्थ-पूर्ण है। इस दृष्टिकोण से यह दुनिया का एक बेमिसाल चित्र है। यह वह चित्र है जिसने अपने आप में संकल्प और आकार दोनों पहलू धारण किए हुए हैं।

? : आज साइंस की खोज पिरामिड शक्ति को कास्मिक जेनरेटर कह रही है। और भारत का यह चिंतन आज साइंस की पकड़ में भी आ रहा है कि हर आकार, हर तरह के कंपन के मेल में से पैदा हुई एक सूरत है। यानी 'आल फ़ार्म्ज़ आर ऐक्चु-अली दि रिज़ल्ट आफ़ कंबिनेशंज़ आफ़ वाइब्रेशंज़'। आपने चित्रकला में शून्य और काल को कैसे महसूस किया है?

मा : चित्रकला में कैनवस का रक़्बा शून्य है। और उसकी हरकत 'टू डाइमेंशनल' है। एक उसकी ऊर्ध्व रेखा (वर्टिकल लाइन) और एक क्षितजीय रेखा (हारिज़ंटल लाइन)।

आगे कैनवस में वस्तुत: कोई गहराई नहीं होती, पर विकर्ण रेखा (डायगनल) उसका बहुत तगड़ा अहसास पैदा करती है।

हमारे हिंदुस्तान की चित्रकला में रंगों का इस्तेमाल, उन्हें फीका या गहरा करने का इस्तेमाल भी, अकसर सजावट के लिए या प्रतीकात्मक तौर पर किया गया है, पर पश्चिमी देशों में रंगों और उनकी टोलन वैल्यू का इस्तेमाल स्पेस को गहराई देने के लिए भी किया गया है।

इसके अलावा 'कैनवस-स्पेस' के लिए दो लफ़्ज़ इस्तेमाल किए जाते हैं। नैगेटिव स्पेस और पाज़िटिव स्पेस। यानी नकारात्मक और सकारात्मक। जिस भी चीज़ का आकार है, फूल, प्याला, या कुछ भी, वह पाज़िटिव स्पेस है। और जो बाहर है, उसके गिर्द, वह नैगेटिव स्पेस है। पर यह दोनों पहलू एक दूसरे के पूरक हैं, एक दूसरे की ज़रूरत।

बुत-तराशी में भी जो कुछ गोलाई के आकार में है, वह पाज़िटिव स्पेस है, और जो ख़ाली स्थल हैं, वह नैगेटिव। वह दोनों एक दूसरे की ज़रूरत हैं।

पर कैनवस की स्पेस से आगे जाकर जब हम अंदर की स्पेस की बात करते हैं, तो उसमें लाखों जहान बसे हुए होते हैं। एक मिनिएचर की मिसाल देता हूं—एक दरवाज़ा है, जो आधा खुला हुआ है। बाहर एक चौकीदार है, उनींदा-सा, और अंदर का दृश्य भी कागज़ पर पेश है—अपने महबूब का इंतज़ार कर रही एक औरत का। वह आनेवाला अभी आया नहीं है। पर दर्शक का ज़हन, उसी का रूप

होकर, चौकीदार के पास से गुज़र कर अंदर दाखिल हो सकता है।

कैनवस पर लगी हुई विकर्ण रेखा (डायगनल) भी आधे खुले दरवाज़े जैसी होती है, जिससे होकर अंदर जाया जा सकता है, और कई बार बाहर आया जा सकता है। यह दर्शकों की अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार है कि वह चिंतन की गहराई में कहां तक उतर सकते हैं···

चित्रकला में गहराई की तीसरी डाइमेन्शन के बाद माना जाता है कि पिकासो ने चित्रकला को चौथी डाइमेन्शन दी है। यह वक्त के एलिमेंट को उसमें शामिल करना है। पिकासो ने आकार में बहुमुखी दृष्टिकोण देने के लिए एक तस्वीर बनाई, जिसमें माडल का चेहरा सामने था, एक जगह पर। कुछ देर बाद माडल को दूसरे रुख़ से पेश करने ने लिए, साथ ही उसका एक चेहरा और बना दिया, जो सामने वाले चेहरे से अलग था। और फिर वक़्त की हरकत को पेश करने के लिए, साथ ही उसका एक और चेहरा बना दिया जो बिलकुल दूसरी तरफ़ देख रहा था···

एक और मिसाल देता हूं—फ्रान्स के चित्रकार मार्सेल दूसां का बनाया हुआ सीढ़ियां उतर रही एक औरत का चित्र है, जिसमें उसके कई आकार सुपर-इंपोज़ किए हैं। किसी आकार में उसके पैर दूसरी सीढ़ी पर हैं, किसी आकार में पांचवीं सीढ़ी पर, किसी आकार में सातवीं या आठवीं सीढ़ी पर। यह सीढ़ियां उतरने की मूवमेंट को दर्शाने का जतन है। वक़्त की हरकत को चित्रित कर सकना।

चीन के चित्रकारों ने सबसे पहले वक़्त की हरकत को पकड़ने की कोशिश की थी। यानी किसी भी चित्र में दर्शाया आकार सांस लेता महसूस हो···उसकी पल्सेशन महसूस हो···अहसास हो कि चित्र वाले आकार ने अभी सांस अंदर खींचा है, और अभी बाहर निकाला है। चीन में कला का यह अंदाज़ 'काई हो' कहलाता है। उन लोगों ने पल्सेशन का यह अहसास नैगेटिव और पाज़िटिव स्पेस के माध्यम से किया है।

पश्चिम में कैनेटिक स्कलपचर विकास में आया है। उसमें आकार भी है, आवाज़ भी, और रोशनी भी। हमारी रावण को जलाने वाली प्रथा में यह कैनेटिक तजुर्बा देखा जा सकता है।

कह सकता हूं कि तकनीक आज की नहीं, पर हमारी लोक-कला में वक़्त और ख़िला को एकजान करने वाले कई चित्र सदियों से बनते चले आ रहे हैं।

जनवरी 1966 में मैंने वाशिंग्टन में कैनेटिक आर्ट की बहुत बड़ी नुमाइश देखी थी। मशीनी मदद से रोशनी और अंधेरे की हरकत में से, बहुत आकर्षक दृश्य पैदा किए गए थे। वहां एक दिन संजोग से मशीन ख़राब हो गई, मैंने अपने अमरीकन दोस्त से मज़ाक़ किया— आज आपके कलाकार की तबीयत नासाज़ है···

याद आता है सिगफ्रायड गिडियन ने अपनी एक किताब में जदीद कला को एक

फ़िक़रे में बांधा है कि जदीद हुनर की सारी लहर ज़्यादातर तकनीकी तजुर्बा है (दी होल मूवमेंट आफ़ माडर्न आर्ट हैज़ बीन प्राइमरिली एटैकनीकल एक्स्पेरिमेंट)···

यह बात गिडियन ने सिर्फ़ इमारतकारी के बारे में नहीं, चित्रकला के बारे में भी कही है। यह ठीक है कि तकनीकी तौर पर चित्रकला में बहुत तजुर्बे हुए हैं। वह कशिश पैदा करते हैं, पर मेरी नज़र में इस कशिश में और रूहानी तजुर्बे में वही फ़र्क़ है, जो स्वाद और खुशी में होता है। एक चीज़ जिस्म की गुदगुदी है, और दूसरी रूह के बंद फूल की पत्तियां खुलने का वक़्त···

हमारे आग में जल रहे रावण का दृश्य बड़ा इफ़ैक्टिव है, बहुत प्रभावशाली, पर उसके दायमी असर के पीछे एक फ़लसफ़ा है कि वह क्यों जलाया जा रहा है···

सिर्फ़ आंखों की तसल्ली पांचों इंद्रियों में से एक इंद्रिय की तसल्ली तो कही जा सकती है, पर बाकी इंद्रियां अपने लिए कुछ तसल्ली मांगती रह जाती हैं।

और उससे भी आगे, उससे भी अलग, मैं चाहता हूं कि प्रभाव का सबसे बड़ा वस्फ़ यह हो कि वह कहीं हमारे अंतर की ओर उतर जाए···

कहना चाहता हूं कि कैनवस की स्पेस अपनी महदूद हदों में से निकाल कर अपने दर्शक को ला-महदूद स्पेस में ले जाए···

? : चित्रकला के लंबे तजुर्बे में आपने कला का संबंध 'स्वयं' के सच से जुड़ा हुआ किस हद तक देखा है?

मा : ज्योमेट्रिकल सच भी बहुत बड़ा सच है, पर जब तक उसमें अनुभव का सच शामिल नहीं होता, वह सच अधूरा रह जाता है···अनुभव किसी भी 'बाहर' को हूबहू काग़ज़ या कैनवस पर उतार लेना नहीं है···वह तो आग का दरिया है, जिसे तैर कर पार जाना होता है, और जिसमें बहुत कुछ भस्म हो सकता है, बहुत कुछ चमक कर मामूली से ग़ैर-मामूली हो सकता है···

स्कूलों वाली सिखलाई, हमारे मुल्क में अंग्रेज़ों ने शुरू की थी—लाहौर, बम्बई, मद्रास, कलकत्ता और लखनऊ में पहले पांच स्कूल बने थे। वह सारी सिखलाई सिर्फ़ आंख की एक इन्द्रिय की बुनियाद पर होती रही, जो 'स्वयं' के अनुभव के लिए किसी तरह भी मददगार नहीं थी। यही कारण है कि एक भी ऐसा चित्रकार पैदा नहीं हो सका जिसका एक चित्र भी पूर्ण कहा जा सके···

हमारी प्राचीन कला में ऐसा नहीं था, पर इस सिखलाई ने हमें अपने ही विरसे से तोड़ दिया···

फिर वक़्त आया—जब सज़ान, वान गाग और दूसरे इम्प्रैशनिस्टों-ऐक्स्प्रैशनिस्टों का काम हमारे सामने आया। उसने कइयों को झकझोर दिया। पर जो कुछ ज़िंदगी का सच नहीं था, वह कला का सच नहीं बन सकता था।··· बहुत सारी नक़ल हुई, पर असल पैदा नहीं हुआ, न हो सकता है···

उन्नीसवीं सदी में हमारे मिनिएचर आखरी सांसों पर आ गए थे। बंगाल

खिचवा लें और उसे एनलार्ज करवा लें···

किसी के लिए काम करने के वास्ते—सामने क्या-क्या मुश्किलें आती हैं, वह एक पीड़ा से भरा हुआ अनुभव था···

वैसे 1969 में जब जलियांवाला बाग़ की अर्ध शताब्दी मनाई गई थी, मेरे उसी स्कैच को मुझसे लेकर उसके आठ फ़ुट चौबीस फ़ुट के एनलार्ज फ़ोटोग्राफ़ बनवाए गए थे, पोस्टर भी बनवाए गए थे—शायद इसलिए कि और किसी चित्र-कार ने उस थीम को चित्रित ही नहीं किया था···

बुनियादी ख़याल चार फ़ुट बारह फ़ुट का म्यूरल बनवाने का था, जो फिर सरकार भूल गई। वह म्यूरल आज तक नहीं बना।

? : निजी तौर पर मेरे लिए एक बहुत कठिन सवाल का बहुत सादा-सा जवाब है कि किसी भी नुमाइश में सैंकड़ों चित्र देखकर जिस एक चित्र के लिए मन में यह आरज़ू पैदा हो जाए कि वह मेरे कमरे की दीवार का अंग होना चाहिए, तो यही आरज़ू मेरे लिए इस सवाल का जवाब बन जाती है कि वह चित्र एक शाहकार है। पर आपकी कलाकार नज़र में किसी शाहकार को परखने का क्या मेयार है?

मा : आख़री प्रभाव तो एक होगा। पर उसका विश्लेषण दो तरह का होगा। एक यह कि वह आपकी चेतनता को छू जाए, इतना कि आपके चिंतन का धरातल बदल दे, वह आपको मानसिक तौर पर बहुत ऊंचा ले जाए। धरती की कशिश को अंबरी बना दे। गेटे के लफ़्ज़ दुहराना चाहूंगा 'ही हू हैज़ आर्ट, ईवन रिलिजन हैज़ ही; ही हू हैज़ नाट आर्ट, लैट हिम रिलिजस बी'—मेरा इन लफ़्ज़ों में पूरा एत-क़ाद है। मैं सोचता हूं कि हुनर और मज़हब एक ही अनुभव के दो नाम हैं, हक़ी-क़त और पहचान की एकरसता···

और दूसरी बात तकनीकी नुक्ते से है कि जिन वस्फ़ों का हमने पहले ज़िक्र किया है—यानी रेखाएं, दिशाएं और टोन्ज़ का और रंगों का ठीक इस्तेमाल, जो अहसास की ज़बान अख़्तियार करता है, वह सारे वस्फ़ उसमें हैं या नहीं—यानी बाहरी आकार और अंदरूनी अहसास एकजान हो गए हैं या नहीं। अगर हो गए हैं, तो वह मेरी नज़र में शाहकार है···जो दिखाई दे रहा है, उसमें अदृश्य होना चाहिए।

? : हमारे आलिमों ने 'स्वयं' के इल्म की सात अवस्थाएं मानी हैं—अज्ञान, आवरण, विक्षेप, परोक्ष, अपरोक्ष, शोकनाश और अति-हर्ष। जाहिर है कि सातवीं अवस्था का अनुभव, 'स्वयं' के अलावा किसी से कल्पित नहीं किया जा सकता। इसलिए चाहूंगी कि सातवां सवाल भी आपकी ओर से हो, और जवाब भी आपकी ओर से।

मा : मुझे जब भी दूसरे देशों में जाने का मौक़ा मिलता है, जिनकी कला को मन में सराहा हुआ होता है, उन कलाकारों को जरूर मिलना चाहता हूं। जब 1965-66

में अमरीका गया था तो वहां के महान् चित्रकार बेन शान से भी मिला था, और अदीब कलाकार ज्यार्जी केपिश से भी, जिसकी किताब 'लैंगुएज आफ़ विज़न' पढ़ी हुई थी। एक इमारतकार पाओलो सोलेरी से ख़ासतौर पर मिला था, जो मेरी नज़र में आने वाले समय का इमारतकार है। उसने बढ़ती हुई आबादी के मसले को सामने रखकर पाताली घरों, आकाशी घरों, और पानी की सतह पर बनाए जाने वाले घरों के नक़्शे बनाए हैं।

इसी तरह मैक्सीको जाने का भी मौक़ा मिला था। वहां मैं लैटिन अमेरिकन सेमीनार आफ़ क्राफ़्ट्स एंड पापुलर आर्ट्स में शामिल होने के लिए गया था। बड़ी ख़ाहिश थी, वहां के महान् चित्रकार सिकिरास से मिलूं। वापसी पर जापान जाना था, बड़ी ख़ाहिश थी कि शीको मुनाकाता से मिल सकूं। मेरी ख़ुश-नसीबी थी कि सबसे मिलने का मौक़ा बन गया।

उन मुलाक़ातों में मैं मुनाकाता की मुलाक़ात को बहुत अहमियत देता हूं, हालांकि दूसरी मुलाक़ातें भी कम अहमियत की नहीं थीं। इन्स्टीच्यूट आप इंटर-नैशनल एजुकेशन न्यूयार्क ने मुझे यह सफ़र स्पान्सर किया था। छः महीने के बाद वापसी के वक़्त उन्होंने चार जगह मेरे ठहरने का बंदोबस्त किया था—हवाई, टोक्यो, हांगकांग, और बैंकाक। पर दो-दो तीन-तीन दिन वहां ठहरने की जगह, मैंने पूरे दस दिन टोक्यो के लिए मांग लिए थे। मैक्सीको में जो मेरा मेज़बान था, उसके घर पर एक जापानी लड़की से मुलाक़ात हुई थी, जिसने जापान में रहने वाली अपनी बहन के नाम मुझे ख़त दे दिया था, जो अंग्रेजी जानने के कारण वहां मेरी बड़ी मददगार बनीं, उसके बिना मेरी जापान यात्रा अधूरी रह जानी थी। उसी लड़की की मदद से मैंने मुनाकाता को टेलीफ़ोन किया। उसने दूसरे दिन के लिए मुझे चाय की दावत पर बुला लिया।

मुझे अभी तक याद है, उस दिन 13 अप्रैल थी, मेरे पास लौटने में तीन दिन बाक़ी थे। मुझे 16 अप्रैल को लौटना था, जिसमें 15 तारीख़ मैंने क्योटो जाने के लिए रखी हुई थी। वह जापान का तवारीख़ी शहर है। इसलिए मुनाकाता ने 14 तारीख़ को बुला लिया, तो मैं बहुत ख़ुश था, मैं उस जापानी लड़की की मदद से वक़्त से पहुंच गया, पर दरवाज़े पर दस्तक देने पर जब मुनाकाता की बीवी ने दरवाज़ा खोला तो हैरान होकर बोली 'मुलाक़ात आज के लिए नहीं थी, कल के लिए है…'

मैं परेशान होकर वापस आ गया। रात को फ़ोन किया तो, मुनाकाता ने बड़ी हलीमी से कहा कि मालूम नहीं तारीख़ की गलती कैसे हो गई है, पर मैं उससे कल ज़रूर मिलने के लिए आऊं…

अब मेरे लिए उस तवारीख़ी शहर में और उस तवारीख़ी कलाकार में—चुनाव करने का वक़्त था। दोनों में से एक को चुनने का। मैंने कलाकार को चुना और दूसरे दिन मुलाक़ात के लिए चला गया…

उसका बहुत ही मुस्कराता हुआ चेहरा था। तआरुफ़ की दो-चार बातें करके उसने पूछा 'तुमने क्योटो देखा है या नहीं ?' मैंने कहा 'आज मेरे सामने यही सवाल था कि मैं क्योटो जाऊं या आप से मिलूं, तो मैं क्योटो छोड़कर आपसे मिलने आ गया हूं···यह भी सोचा था कि क्योटो तो हमेशा यहीं रहेगा, मैं कभी फिर भी आ सकता हूं, पर अगर 'फिर' पर डाले हुए वक़्त की घड़ी में आप न हुए तो क्या करूंगा···' उस समय हम दोनों उस कमरे में सजे हुए फ़र्श पर बैठे हुए थे। वह खड़ा हो गया, तो मैं भी खड़ा हो गया। उसने कसकर मुझे अपनी बांहों में ले लिया···

लोक-कला के म्यूज़ियम की बात करते हुए जब मैंने बताया कि मैंने वह देखा है, तो उसका सवाल था कि उस म्यूज़ियम में तुमने सबसे बढ़िया क्या देखा है ?—जवाब में उसी म्यूज़ियम में लगी हुई उसकी पेंटिंग्ज़ भी सामने आईं—पर एक सिरैमिक प्लैक इस तरह आंखों के सामने आकर खड़ी हो गयी कि आंखों के आगे से परे हो ही नहीं रही थी···

उस म्यूज़ियम में सचमुच शाहकार लगे हुए थे। एक ख़ास स्तर से नीचे स्तर का कोई चित्र नहीं था। उसकी कला के शाहकार भी थे, पर वह सिरैमिक प्लैक, मेरे अंदर मेरे मन की दीवार पर जैसे लग गई थी, जब मैंने उसकी बात की, तो वह फिर खड़ा हो गया। मैं भी उठकर खड़ा हो गया, तो उस समय उसने रूह की सारी गर्माई से मुझे फिर आलिंगन कर लिया, बोला 'आज तुमने मेरे उस्ताद से मुलाक़ात की है···'

मेरी समझ में नहीं आया, हैरान हुआ कि क्या वह सिरैमिक प्लैक उसके उस्ताद की कृति थी ?—तब उसने बताया कि नहीं, वह किसी और की है, पर वह कृति मेरी उस्ताद है। मैं आज जो कुछ भी हूं, उसी कृति की प्रेरणा है···

किसी की कृति को उस्ताद मानना—मेरी नज़र में एक बड़ा ही हसीन नज़रिया था···

और उसी कृति की पहचान ने, उसकी आंखों में मेरे लिए क़द्र भर दी···

कोई कृति- –रूहों की पहचान का माध्यम हो सकती है, यह मैंने उस घड़ी में जाना था।

वह मुलाक़ात मेरी रूह की अमीरी है···

आज मैं—सारे अनुभवों को सामने रखकर अगर अपने आपसे प्रश्न करूं कि कौन-सा एक अनुभव मेरी रूह को दिव्य सौंदर्य के दर्शन का पल दे गया था, तो यही मुनाकाता की मुलाक़ात वाला पल मेरे सवाल का जवाब बनता है।

इमरोज़ चित्रकार से सात सवाल

? : ज़िंदगी और कला आप दो अलग-अलग हक़ीक़तें समझते हैं या एक ?

इ : मेरी नज़र में—आज की मिट्टी में चिन्तन का बीज डालकर, उसे कल के सूरज की धूप लगवा सकना—कला है। दूसरे लफ़्ज़ों में ज़िंदगी एक बिंदु है, और कला उस बिंदु का विस्तार। यह सवाल ही पैदा नहीं होता कि ज़िंदगी और कला दो अलग-अलग हक़ीक़तें होती हैं। ज़िंदगी एक धरती है और कला धरती की उर्वरता। यह भी कह सकता हूं कि ज़िंदगी पानी है, और कला उसकी रवानी, उसका प्रवाह। हमारे प्राचीन दर्शन के अनुसार जो शिव-शक्ति की कल्पना है, वही मेरी नज़र में जिंदगी और कला की कल्पना है।...

ज़िंदगी आंख है, और कला उसकी नज़र और नुक़्ता-नज़र। मैं तो इन्सान की ज़ात भी उसके कर्म और कसब के मुताबिक़ समझता हूं। मेरी नज़र में एक चित्रकार की ज़ात उसके रंग होती है। एक शायर या अदीब की ज़ात उसके अक्षर और एक संगीतकार की ज़ात उसके स्वर।

इस तरह अगर हर व्यक्ति का कसब उसकी ज़ात हो जाए, तो कसब का ईमान उसका मज़हब हो जाएगा।

? : कला और क्राफ़्ट की तशरीह करेंगे ?

इ : मेरी नज़र में—अहसास की अमीरी वह दूध है, जिसमें सिर्फ़ तखय्युल का जामन लगता है। इसी तखय्युल का नाम कला है। और उसे बिलोने का कर्म एक क्राफ़्ट है। बड़ा अहम कर्म, लेकिन कला के जामन के बिना अर्थहीन। कई प्राचीन चित्र ऐसे हैं, जिन पर किसी मुग़ल बादशाह का नाम भी लिखा जा सकता है, किसी बहादुर राजपूत का भी, और किसी जाहो-जलाल वाले गुरु पीर का भी। इसीलिए कि चित्रकारों ने उन चित्रों में तखय्युल का चित्रण नहीं किया, सिर्फ़ श्रद्धा का शृंगार किया है। ऐसे चित्र वक़्त के दस्तावेज़ भी नहीं बनते।

? : कला में अचेत आरज़ू और चेतन जतन की क्या अहमियत है ?

इ : अचेत आरज़ू एक बीज है। और मन की मिट्टी की गुड़ाई करना, उस पर सुहागा फेरना, उसमें खाद डालना, और बीज को बीजने के बाद उसे ठीक समय पर पानी देना, धूप दिलाना, फिर उस पौधे की छंटनी करना, और आस-पास उगी हुई खर-

पतवार को निकालना—चेतन जतन है ।

? : ज़िंदगी का कोई ऐसा हादसा बताएंगे, जिसने धर्म और समाज की या वक़्त के इन्साफ़ की स्थापित क़ीमतों के सामने, पहली बार कोई सवालिया निशान लगा दिया हो ?

इ : मैं तब करीब ग्यारह बरस का था। दादा-दादी जीते थे। उनके पांच बेटों में से सिर्फ़ सबसे बड़ा व्याहा हुआ था, मेरा बाप और सब क्वारे थे। ज़मीन थोड़ी थी, जिससे दुक्खम-सुक्खम सबका गुज़ारा कठिनाई से ही हो सकता था। व्याहे हुए लड़के का भार, औरों को रड़कने लगा, तो दीदी ने, माल-डंगर वाले अहाते में एक कोठरी डलवा कर, बड़े बेटे को उसके टब्बर के साथ अलग कर दिया।

घर में और अहाते में सिर्फ़ चार क़दम की दूरी थी, वैसे दोनों आमने-सामने थे। जब तक मेरी मां जीवित रही, दोनों घरों के बीच का यह थोड़ा-सा फ़ासला जैसे कोसों का बना रहा। पर मां मर गई, और मेरी छोटी बहन जब कोई नौ बरस की थी, चूल्हे पर कच्ची-पक्की रोटियां थापने लगी थी, तो दादी को बे-मां के इन बालकों पर ममता आ गई, फिर वह कभी आते जाते बालक को बुलाकर रोटी का टुकड़ा देने लगीं। दादा भी बालकों को लिहाफ़ में बिठा कर पुचकारने लगे।

मेरे क्वारे चाचाओं में से बड़ा चाचा सुन्दर 'नम्बरदार' हो गया था, और छोटे चाचा खेत जोतते थे। हमारे गांवों में जो आदमी ढंग से खेतों का काम नहीं करता, लेकिन ऊपर के काम करता है, उसे सब 'नम्बरदार' कहने लगते हैं। सो मेरा यह नम्बरदार चाचा बस 'सानगी' बजाता था।

और फिर 'मेरी लगी किसी ने न देखी' वाली बात हो गई। 'सानगी' वाले चाचा को गांव के करालों की बेटी बन्सो से इश्क़ हो गया।

मुझे याद है—बन्सो के घर में कोई नया कमरा बनाया जा रहा था, जहां घर वाले दिन-भर गारा बनाते और ईंटें ढोते थे, और मेरा चाचा भी 'सानगी' को भुलाकर, बन्सो के घर पर गारा बनाने बैठ गया था।

यह 'हीर निमाणी ईंटें ढोवे और रांझा ढोवे गारा' वाली कोठरी नहीं बन रही थी, यह तो सयालों की भैंसें चराने वाली हालत थी···

बन्सो ने अपनी मां की चोरी से सुंदर चाचा के लिए कभी चूरी कूटी होगी या नहीं, मैं नहीं जानता। मुझे भी होनी की खबर तब हुई, जब सारे गांव को हुई कि एक रात घर का दरवाज़ा बंद करने के लिए बन्सो बाहरी दहलीज़ के पास आई तो दहलीज़ को लांघ कर बाहर ही आ गई, भीतर घर की ओर नहीं लौटी।

और अगले सवेरे—गांव में न बन्सो थी, न सुंदर चाचा।

बन्सो के घर के लोग जट्ट नहीं थे, कराल थे, (जिन्हें शहरों में लोग अहलुवालिया कहते हैं) इसलिए घर को जो आग लगी थी उसका धुआं अन्दर ही बन्द

करके, मुंह सिये बन्सो की तलाश में निकल गए।

हमारा यह गांव चक नम्बर छत्तीस, लायलपुर से बारह कोस पर था। बन्सो के घर के लोग सीधे लायलपुर गए। वहां उन भटकते हुए लोगों को एक टैक्सी वाले ने खबर दी कि वह दोनों प्रेमियों को लायलपुर के दूसरे छोर पर बसे जड़ां-वाला के निकट एक गांव में उतार कर आया था।

सुराग़ मिल गया, तो प्रेमी भी मिल गए।

बन्सो के घर वालों ने तब भी मुंह नहीं खोला, लेकिन लड़की को बांधकर घर ले आए, और उसे पीछे वाली कोठरी में डाल दिया। सुंदर से उन्होंने कुछ नहीं कहा, नहीं तो जाने गर्म ताव कइयों से सिर उतर जाते।

लेकिन टूटती को जग ने जान लिया था, इसलिए बन्सो के घर वालों ने एक दिन बन्सो को लायलपुर ले जाकर किसी दुहेजू बुड्ढे के पल्ले बांध दिया।

भट्टी पर कुछ दिन चर्चा पकती रही, लेकिन चिंगारियां दोनों पक्षों में से किसी के कपड़ों पर भी नहीं पड़ीं।

सिर्फ़ कुछ चिंगारियां थीं जो गांव के लौंडे-लारों ने चुन ली थीं, और वह कभी-कभी उनके होंठों पर जल उठती थीं।

यह भी कह सकता हूं कि वह लौंडे-लारे छोटे-छोटे किस्सागो थे, जिन्होंने बन्सो और सुंदर को लेकर कुछ तुकें जोड़ ली थीं, लेकिन जब वह अकेले-दुकेले होते थे, तब ही मुंह खोलते थे, गांव में किसी के सामने मुंह से बात नहीं निकालते थे।

मुझे सिर्फ़ एक ही बोल याद है, जो आपस में हंसी-मज़ाक़ करते हुए वह लड़के गाया करते थे—'मुझे सानगी बना ले सुंदर, कंधे से तेरे बजती रहूं···'

और एक और समय की बात याद है, जब गांव में हीर गाते हुए चेतू ने एक दिन खुद ही हीर की कलियों में एक कली जोड़ दी थी—'डोली चढ़दियां बन्सो ने चीक मारी, मैंनूं लै चल्ले सुंदरा लै चल्ले वे···तेरी भरी जवानी दा रब्ब राखा, असी बुड्ढे दे वस्स विच पै चल्ले वे···'

और फिर एक दिन अचानक बाज़ टूट पड़े।

किसी होनी का वहम-गुमान भी नहीं था। गांव के नम्बरदार से पानी के कारण लगती आ रही थी, लेकिन बात कहा-सुनी तक ही होती थी, कभी किसी ने दूसरे पक्ष को काटने-मारने की बात मुंह से नहीं निकाली थी। लेकिन एक शाम को नम्बरदार के दोनों कड़ियल जवान भानजे बरछियां लेकर चाचाओं के खेत में पहुंच गए। एक ललकार मारी और चाचाओं पर टूट पड़े।

उस समय खेत में सिर्फ़ मेरा दादा था, और एक चाचा। वह सानगी वाला सुंदर चाचा नहीं था। दादा ने अपनी लाठी से बरछी का वार रोक लिया। लेकिन चाचा के सिर में बरछी लग गई। उस समय चाचा ने एक बरछी वाले को कमर से पकड़ कर पटख दिया और उसी के हाथ की बरछी छीनकर उसके पेट में घोंप

दी। दादा गदके का खिलाड़ी था, इसलिए बरछियों के वार रोकता रहा। दूसरे बरछी वाले को भी दादा और चाचा ने गिरा कर उसकी बरछी उसी के पेट में घोंप दी।

मिनटों में यह दो क़तल हो गए, तो गांव पर थाना चढ़ आया। नम्बरदार का खाता-पीता घर था, इसलिए मेरा दादा, तीनों चाचा और मेरा बाप, सब बांध लिए गए। मुकदमा चला। मेरा बाप, सुंदर चाचा और छोटा चाचा मौके पर नहीं थे, इसलिए तीनों बरी हो गए, लेकिन दादा को और एक चाचा को फांसी की सज़ा सुना दी गई।

अपील की गई तो चाचा की फांसी की सज़ा काले पानी की हो गई, और दादा की मुलतान जेल में चौदह बरस की।

गांव में बुझी हुई आग फिर सुलगने लगी। लोग अंदाज़ा लगाते थे कि करालों ने नम्बरदार को पैसा चढ़ाया था, जिससे उन्होंने अपने हाथ बचा लिए, लेकिन जाटों के हाथ लहू से भिगो कर अपना बदला ले लिया। मैं आज तक नहीं जानता कि यह अंदाज़ा कितना सच है और कितना झूठ। मैंने सिर्फ़ बर्बाद होता घर देखा है, और सुंदर चाचा की वह सानगी सुनी है जो आधी-आधी रात तक बैनों की तरह बजा करती थी।

? : कला के आलोचकों का कर्म आपकी नज़र में क्या है ?

इ : कला के फलों और फूलों का माली मैं सिर्फ़ कलाकार को मानता हूं। कोई आलोचक उसका माली नहीं हो सकता। लेकिन वह एक अच्छा मौसम ज़रूर हो सकता है। यह एक उदास इतिहास है कि आलोचक एक अच्छा मौसम होने की जगह, अकसर फलों को ठोंग मारने वाला जंगली तोता हो जाता है। और कई बार पत्तों को खाने वाला कीड़ा तक भी।

? : ज़िंदगी में आप ने कभी कलियुग की घड़ी देखी है ? या सतयुग की ?

इ : अपनी मनचाही औरत के साथ बीस साल जी लेना मेरे लिए सतयुग है। और 1960 में जब मैं ने अपने मन की दुविधा के कारण उसी औरत को स्वीकार करके भी स्वीकार नहीं किया था, तो वह मेरे लिए कलियुग की घड़ी थी।

? : हमारे देश के सात पवित्र स्थान सात पुरियां कहे जाते हैं—अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्ती और द्वारावती। यह सातवीं पुरी द्वारावती समुद्र के किनारे पर हुआ करती थी, जो कृष्ण के देह त्यागने के बाद सातवें दिन समुद्र में अलोप हो गई थी। अब यूं तो वह द्वारिका के नाम से दूसरी जगह बस गई है, लेकिन अपने मूल स्थान से अलोप हो चुकी है। मेरा सातवां सवाल आप के मन के समुद्र में अलोप हो गई पुरी जैसा है, जिसकी खोज आपको खुद करनी है, और उसका इतिहास खुद ढूंढ़ना है।

इ : यहां मैं कलैक्टिव मन की बात करना चाहता हूं। इस मन के समुद्र में जो पुरी

अलोप हो गई है वह इन्सान के धर्म की पुरी है। वह द्वारावती अब अनेक धर्म-स्थानों के नाम पर जगह-जगह बस गई है, लेकिन किसी स्थान पर भी धर्म की आत्मा नहीं बस सकी। आत्मा समुद्र में अलोप हो गई है।

स्थानों की स्थापना अंधी श्रद्धा के कारण हुई है, आंखों वाले विश्वास के कारण नहीं। धर्म कभी आंखों की बलि नहीं मांगता।

वीरेंद्र मागो से सात सवाल

वीरेंद्र मागो से पहली मुलाकात राजगिल के घर पर हुई थी। उनके सामने सिर्फ़ एक कागज़ था और एक पैन्सिल। जिसने भी वह पैन्सिल उठाकर उस कागज़ पर अपने हस्ताक्षर किए, मागो साहब ने कोई दो मिनट उस हस्ताक्षर की ओर देखा और फिर हस्ताक्षर वाले के व्यक्तित्व का राज़ खोल कर रख दिया।

हस्ताक्षर चाहे कोई पंजाबी में करे, या अंग्रेज़ी में, या किसी भी भाषा में—भाषा उनके सामने बाधा नहीं बनती। मुझसे बात करते हुए उन्होंने पहला वाक्य कहा—कहीं कोई घुंडियां नहीं, सीधे स्ट्रोक्स हैं, और एक अंदाज़े-बयान है···

मेरे होंटों पर हल्की-सी मुस्कराहट आई। वह मुस्कराहट सोच रही थी कि क्या ग़ालिब की तरह लकीरों के पास भी अंदाज़े-बयान होता है।

"सीधे और तीखे स्ट्रोक्स का मतलब है कि आपकी विलपावर को कोई कहीं से हिला नहीं सकता। साफ़-बयानी भी ज़ाहिर है। और 'टी' के हारिज़ंटल स्ट्रोक ने बाकी अक्षरों को अपने साये में लिया हुआ है, जिसका मतलब है कि आप के साये में कई लोगों को पनाह मिलती है···।"

और फिर उनके मुंह से निकला—"पिछले दो साल से एक अजीब दौर चल रहा है, एक तरफ़ लोगों की तालियां आपके लिए गूंज रही हैं, और दूसरी तरफ आपकी जान पर खतरा मंडरा रहा है···"

मैंने हंसकर पूछा— यह चुग़ली मेरे किस अक्षर की कौन-सी लकीर ने की है? तो वह गंभीर होकर बोले—"हाथ की लिखत को पढ़ना सिर्फ़ एक विज्ञान है। और चेहरे से लेकर किसी की भी आमद को और उसकी हर अदा को पढ़ना एक और विज्ञान है। इस वक्त मैंने सिर्फ़ यह दो इकट्ठे किए हैं। लेकिन हाथ की लकीरें और नम्बर विज्ञान जैसे और विज्ञान भी इसमें मिला लूं तो ऐसी कोई बात नहीं है जो मैं नहीं बता सकता···।"

एक ज्योतिष विज्ञान शायद उनके अध्ययन में शामिल नहीं है। बाक़ी उनके कहने के अनुसार "सहज इन्ट्यूशन" तक कोई दस विज्ञान उनकी जानकारी में है···

और उनके साथ अगली मुलाक़ात मेरे घर पर हुई। इस मुलाकात को मैंने

हैरानी की स्याही में से डोबा लेकर उस रात अपनी नई डायरी में दर्ज किया था, जिस पर 30 मई 1984 की तारीख पड़ी हुई है। उस डायरी की कुछ पंक्तियां यहां दे सकती हूं—"अचानक मेरे हस्ताक्षर का अध्ययन करते हुए मागो साहब ने कहा—आप पिछले जन्म में शाही खानदान में पैदा हुई थीं, आपने एक पतले और लम्बे कद के शाहज़ादे से मुहब्बत की, उससे शादी की, और उसी से हसद की वजह से एक औरत ने आपको ज़हर देकर मरवा दिया था"—

आज बम्बई के एक फिल्म डायरेक्टर राघव भी मेरे घर आए हुए हैं, जिन्हें मैंने दोपहर के समय अपनी अभी-अभी छपी पिछली डायरी में से वह पन्ना सुनाया था, जिसमें मेरा वह सपना दर्ज था जिसमें मैंने अपना पिछला जन्म देखा था। आज शाम को जब मागो साहब मेरे पिछले जन्म की घटना सुना रहे थे, तो राघव मेरी ओर देखने लगे, और मैं राघव की ओर, क्योंकि ठीक वही घटना थी जो मैंने सपने में पिछले जन्म के बारे में देखी थी। सिर्फ़ इतना अन्तर था—कि मैंने इस घटना में आत्म-हत्या से अपनी मौत देखी थी, और मागो साहब कह रहे थे कि वह मौत किसी के द्वारा दिए गए ज़हर से हुई थी···

मैंने वह घड़ी देखी है जब मागो साहब 'इन्ट्यूशन' से ऐसी घटना बयान करते हैं, जब वह समय के पाताल में उतर जाते हैं, और फिर उस परादर्शी पल के बाद वह बिलकुल शक्ति-हीन होकर चुप बैठ जाते हैं···

ऐसे चमत्कारी पलों का विज्ञान पकड़ में नहीं आता, लेकिन हस्तलिखित इबारत को पढ़ने वाली और नम्बर विज्ञान को कुछ जान सकने वाली विद्या किसी हद तक पकड़ में आ सकती है, इसलिए कुछ उसकी बात करने के लिए मैंने मागो साहब से फिर एक मुलाक़ात मांगी और 9 जून को हुई उस मुलाक़ात की बातचीत अपने पाठकों की नज़र करती हूं—

? : मागो साहब ! मेरी सादगी देखिए कि मैं एक सीधा-सा सवाल आप से पूछ रही हूं कि वह किसका ख़त था जिसकी लिखावट में से उस की रूह का दीदार हासिल करने के लिए आप ने इस विज्ञान का अध्ययन शुरू किया था ?

मा : सादगी की दाद देता हूं, लेकिन हक़ीक़त यह है किसी का भी ख़त नहीं था। आज से कोई दस बरस पहले मैंने एक आर्टिकल पढ़ा था, इस विज्ञान के बारे में। उस समय लगा था कि मेरे अंदर कोई जन्मजात इश्क़ था, इस खोज के बारे में। लेकिन वह मेरे मन के अंधेरे में छिपा हुआ था। वह आर्टिकल एक मोमबत्ती की तरह था, जिसकी रोशनी में मैंने अपना इश्क़ पहचान लिया। और जान पहचान वाले लोगों की लिखी इबारत इकट्ठी करके मैं खोज करने लगा। फिर दुनिया के मशहूर लोगों के हस्ताक्षर इकट्ठे किए, और हर अक्षर की हर घुंडी, गोलाई और उसका कोण सामने रख के अध्ययन करने लगा। इस तरह मैंने अपने तौर पर पहचान के कई उसूल बना लिए, जिन्हें लागू करके मैं हक़ीक़त की थाह पाने लगा।

कमलेश्वर ने बम्बई टेलिविज़न पर मेरी और प्रसिद्ध ज्योतिषी जगजीत उप्पल की बातचीत प्रसारित की थी। जालंधर टेलिविज़न वालों ने मेरी आंखों पर पट्टी बांधकर बिठाया था, ताकि मैं हस्ताक्षर करने वाले की शक्ल से कोई अंदाज़े न लगा सकूं? और जब दस व्यक्ति बोर्ड पर अपने-अपने हस्ताक्षर करके चले गए, तो मेरी आंखों से वह पट्टी उतार दी गई। उस समय मैं चेहरा-विज्ञान की मदद भी नहीं ले सका। सिर्फ़ हस्ताक्षरों के अध्ययन से उन लोगों के चरित्र पेश किए थे···

अब नौबत यहां तक आ गई है कि मुझे पूरे हस्ताक्षर देखने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती, एक ही अक्षर से इन्सान का चरित्र बता सकता हूं। बस दो मिनट चाहिए होते हैं···

इस विज्ञान में कई लोग मोटी-मोटी बातों का अंदाज़ा लगा सकते हैं, लेकिन बहुत बारीकियों में नहीं जा सकते। शिकस्ता लिखाई से अकसर यह अंदाज़ा लगाया जाता है कि वह व्यक्ति अपने बारे में स्पष्टता नहीं देना चाहता। लेकिन यह बात हर व्यक्ति के बारे में सिद्धान्त नहीं बनती। नैपोलियन जैसे किरदार शिकस्ता इसलिए लिखते हैं कि उनके खयालों की तेज़ी को उनका हाथ पकड़ नहीं सकता। इसी तरह महात्मा गांधी की लिखावट के बारे में कहा जा सकता है। इस अध्ययन में स्टाइल भी देना होता है, स्पीड भी, अक्षरों का साइज़ भी, उनके बीच की स्पेसिंग भी, मूवमेंट भी और उनकी स्लांठ भी—यानी अक्षरों का झुकाव दाईं ओर है, या बाईं ओर। और एक और बहुत बड़ी बात कि वह आखरी स्ट्रोक कैसे लगाते हैं।

अब मेरी महारत इतनी हो गई है कि मैं अक्षरों से इन्सान पर ग़लबा करने वाला प्लैनेट भी बता सकता हूं। अगर रूलिंग प्लैनेट पकड़ में आ जाए, तो बेइंतहा बातें बताई जा सकती हैं—यहां तक कि उस इन्सान की बीमारियों तक के बारे में बताया जा सकता है।

कई तरह के अनुमान यहां से भी लगते हैं कि इन्सान कलम कैसे पकड़ता है। निब के पास से या बहुत दूर से। और जिन अक्षरों पर बिंदी लगनी होती है, उससे भी—कि बिंदी ठीक अक्षर के ऊपर है या कहीं दाएं-बाएं—या वह बिलकुल गायब है।

? : एक अक्षर से या दो अक्षरों से किसी का रूलिंग प्लैनेट पकड़ने वाली बात कमाल है। लेकिन आपने कई और विज्ञान भी इस अध्ययन में शामिल किए हुए हैं—कुछ चेहरा-विज्ञान के बारे में बताइये।

मा : चेहरा-विज्ञान का अध्ययन इतना गहरा है कि माथे के बालों से लेकर, माथे का साइज़, लकीरें, नाक और होंठों के बीच की जगह के ग्रूव और जबड़े की लकीरों के बारे में, यानी एक-एक बात के बारे में एक-एक किताब लिखी जा सकती है···

माथे की लकीरें टेढ़ी-मेढ़ी हैं, या सीधी वर्टिकल, या हारिज़ंटल—एक बहुत बड़ा अध्ययन है। वर्टिकल लकीरों वाला इन्सान अपने हर मक़सद को हासिल करने की ताक़त रखता है। हारिज़ंटल लकीरों वाला बौद्धिकता के साधनों का मालिक होता है।

पहली बात तो यह कि माथा, बाक़ी चेहरे के मुक़ाबले में छोटा या बड़ा है। बंदरों का माथा सबने देखा है कि या तो बहुत छोटा होता है, या बहुत बड़ा। चेहरे से संतुलन नहीं रखता। ऐसे माथे वाले इन्सान ऐनिमल इंस्टिक्ट वाले होते हैं···

जबड़ों की दो गहरी लकीरें इन्सान की बौद्धिकता की गवाही देती हैं। नाक की नोक और होंठों के सिरे के बीच जो ग्रूव होता है, अगर उसकी गहराई हो, और गहराई के दोनों सिरे स्पष्ट हों, साथ ही यह कि वह ग्रूव ऊपर से चौड़ी और नीचे से तंग हो, तो वह इन्सान खुश-नसीब होता है। ग्रूव जितनी ऊपर से तंग और नीचे से चौड़ी हो, उतनी ही खुश-नसीबी कम हो जाती है···

? : यानी चौड़ी जगह से वह खुश-नसीबी कहीं बाहर बिखर जाती है। इस चेहरा-विद्या में हाथों का अध्ययन भी शामिल है ?

मा : ज़रूर शामिल है। इन्सान का हाथ अगर बंदर के हाथ की तरह बहुत छोटी उंगलियों वाला हो, तो इन्सान के हाथ की ख़सलत बंदर की ख़सलत जैसी होती है। इन्सान की हथेली बहुत बड़ी हो, और उंगलियां बहुत छोटी, तो वह बदनसीब क़त्ल जैसे जुर्म भी कर सकता है···

इसी तरह अगर किसी का अंगूठा बहुत छोटा हो, अगला हिस्सा बहुत मोटा और चपटा-सा हो तो उसके नसीबों में भी जुर्म लिखे होते हैं।

मानसिक तौर पर बीमार लोग अपने हाथ का अंगूठा जैसे हथेली में छिपा कर रखते हैं। अंगूठा विल-पावर की बहुत बड़ी गवाही देता है। लम्बा और आगे से कुछ पतला अंगूठा पैनीट्रेटिंग की और इन्ट्यूइटिव पावर की निशानी होता है। इसी तरह टेढ़ी उंगलियां, मन के अंदर की ग्रन्थियों का पता देती हैं। मानसिक तौर पर परेशान लोग, आंखें खोलते वक़्त अपनी भौंहों को जरूर ऊपर उठाते हैं···

? : यानी आंखों पर जैसे भौंहों का कोई भार पड़ा हो। सो इन्सान के अपने अंग ही उसके वस्फ़ों और उसकी ख़ामियों के वायदा-माफ़ गवाह होते हैं···

मा : यह वायदा-माफ़ गवाह का लफ़्ज़ आपने बहुत बढ़िया इस्तेमाल किया है। यहां तक कि इन्सान कमरे में दाख़िल कैसे हुआ है, उसने कमरे में बैठे हुए लोगों को अदब-व-आदाब कैसे सलीक़े से किया है, अगर हाथ मिलाया है तो अपने हाथ में वह कितना हाज़िर था, और कितना ग़ैर-हाज़िर, फिर अगर वह किसी बात पर हंसा है, तो उसकी हंसी कितनी सहज थी, या वह सप्रैस्ड हंसी थी, या फ़ोर्स्ड हंसी—यह सब बातें उसकी वायदा-माफ़ गवाह होती हैं···

? : हमारे अदब में जो लोग अर्थों को घुमाते हैं, उस दर्द से मैं वाकिफ़ हूं, लेकिन जो

अक्षरों को घुमाते हैं, उनसे भी आपने कुछ वाक़िफ़ करवा दिया, मेहरबानी !···
अब अपने नम्बर विज्ञान पर कुछ रोशनी डालिये !

मा : वैसे तो मैं नम्बर विज्ञान को कई पहलुओं से परख सकता हूं। एक से नौ तक के बीच किसी को सहज मन उसके होंठों पर आया नम्बर सुनकर, और उस नम्बर की फ़ितरत समझकर बहुत कुछ बता सकता हूं, लेकिन इस वक़्त आपको जन्म-तारीख के नम्बरों से हासिल हुई वाकफ़ियत की मिसाल देता हूं। आपकी ही मिसाल देता हूं—जन्म-तारीख 31 अगस्त 1919 है। मैं पहले सिर्फ़ तारीख देखता हूं, 31 का पहला अंक अलग और दूसरा अलग है। फिर 31 की विशेषता। इसके अनुसार आप में इंटलैक्चुअल फ़ोर्स है, साथ ही मेडीटेशन की शक्ति, साथ ही डैथ-मिस्टरी के बारे में जानने की जुस्तुजू। साथ ही कोई चीज़ बे-तरतीब नहीं होनी चाहिए, नाजायज़ नहीं होनी चाहिए, इस बात की बड़ी पकड़ है। साथ ही यह कि किसी तरह की भी डिस-रैस्पैक्ट आप से बर्दाश्त नहीं हो सकती।

आगे आता है महीना। अगस्त आठवां महीना है, इसलिए इसका आठ नम्बर आपके साथ राह-चलती दुश्मनियां पैदा करता रहेगा। यह आपकी तक़दीर में लिखा हुआ है। और आगे आ गया साल। 19 अंक का दुहराव। यानी दो बार 19, 19। इसका मतलब है—आसमानी बादशाहत। यह कामयाबी का सूचक है।

इन सब नम्बरों का जोड़ 5 बनता है। यह कल्पना शक्ति का सूचक है। साथ ही लगातार तब्दीली का। साथ ही शोहरत का और लाजवाब बौद्धिकता का। स्वभाव के लिए कह सकता हूं कि बाहरी कोई चीज़ आपको अपने असर के नीचे नहीं ले सकती। यह दृढ़ता का सूचक है।

? : मागो साहब ! आपका यह सारा अध्ययन, दलील की पकड़ में आता है। लेकिन जो पकड़ में नहीं आता, वह आपकी काल की तहों में उतर जाने वाली शक्ति है। उसके बारे में कुछ कह सकते हैं ?

मा : यह ख़ुदा-दाद देन है। मैं इस के बारे में कुछ नहीं कह सकता। यह शक्ति तपस्वियों में सुनी है। लेकिन मैंने ज़िंदगी में कोई साधना नहीं की। ज़रूर किसी पिछले जन्म से मुझ में आ गई है, ऐसा लगता है। मैंने चेतन तौर पर इसके लिए कुछ नहीं किया।

मिसाल के तौर पर एक घटना सुनाता हूं कि एक सरकारी अफ़सर मेरे पास आया कि उसका भाई कुछ दिनों मे लापता है। क्या वह ज़िंदा भी है या नहीं ? वह अपने भाई के हाथ की लिखाई अपने साथ लाया था, क्योंकि उसने सुन रखा था कि मैं हाथ की लिखाई से बहुत कुछ बता सकता हूं। मैंने लिखाई देखी, और कहा कि वह ज़रूर ज़िंदा है। आपका शक ग़लत है कि उसने आत्म-हत्या कर ली होगी। यह बता सकना, उसकी लिखाई से पढ़ा था। लिखाई में, यानी अक्षरों की बनावट में, जिंदगी से मुहब्बत की गवाही स्पष्ट थी और जो जिंदगी से मुहब्बत करता हो, वह आत्म-हत्या नहीं कर सकता। किसी रौ में करना भी चाहे, तो

आज पानी ठंडा है, कल आत्म-हत्या करूंगा, जैसी कोई बात सोचकर मौत के किनारे से भी लौट आएगा···

लेकिन मैं बात यह बताने लगा था कि इतना कुछ कह सकना वैज्ञानिक बात थी। लेकिन उस समय साथ ही मेरे मुंह से निकला—वह एक सप्ताह तक खुद आ जाएगा, पटना गया हुआ है। यह अगली बात किसी इबारत से नहीं पढ़ी जा सकती। यह उस समय मेरे सामने अचानक मूर्तिमान हुई थी। मेरी यह बात ठीक निकली। उसका भाई सचमुच पटना गया हुआ था। एक सप्ताह बाद खुद वापस आ गया। लेकिन यह किसी घटना को मेरे सामने मूर्तिमान करने वाली कौन-सी दैवी शक्ति है, यह मैं भी नहीं जानता। सिर्फ़ यह जानता हूं कि ज़ेहन में एक दृश्य पैदा होने से पहले मेरे सारे बदन में एक कंपन आता है। उस दिन शायद आपने ग़ौर किया हो कि जब मैंने आपको आपके पिछले जन्म के बारे में बताया था, मैंने अपने ज़ेहन में एक मुग़लिया महल देखा था, जिसके बगीचे में हू-ब-हू आपको देखा था। सिर से पैरों तक सफ़ेद रेशम का लिबास था, सारे ज़ेवरात भी सफ़ेद मोतियों और हीरों के, सिर्फ़ कंधों पर हल्के नीले-रंग का दुशाला-सा था···और वह सब कुछ आपको बताने के बाद, मैं कितनी ही देर तक कुछ नहीं बोल सका था···ऐसे परादर्शी पलों के बाद मेरी शरीर की सारी शक्ति मेरे शरीर से निचुड़ जाती है···

? : मागो साहब ! अब सातवां सवाल नहीं करूंगी। अपनी किसी तमन्ना को खुद ही अपने होंठों पर आने दीजिये।

मा : मैं कोई दस बार मौत से बचा हूं। हर बार मुझे एक अहसास हो जाता है कि आज कुछ होने वाला है। लेकिन साथ ही यक़ीन होता है कि मैं अभी मर नहीं सकता—जानता हूं कि मेरी पूरी उम्र 72 या 74 साल है···

पिछले दिनों हम परिवार के सब लोग पहाड़ गए हुए थे। वहां एक दिन मेरा लड़का घुड़सवारी करना चाहता था। मैंने दो घोड़े मंगवा लिए। लेकिन जब मेरा लड़का एक घोड़े की रकाबों में पैर रखने लगा तो मुझे अहसास हुआ कि कोई ख़तरा सामने है। मैंने उसी वक़्त अपने बेटे से अपना घोड़ा बदल लिया। और जैसे ही मैंने उस घोड़े पर पैर रखा, जिस पर पहले मेरे बेटे को सवार होना था, तो वह घोड़ा सरपट दौड़ लिया और मैं कोई दो मील उसके साथ ज़मीन पर घिसटता गया···

यह मेरे बेटे को पेश आने वाला हादसा था, जो मैंने अपने ऊपर ले लिया था···

इस तरह मैं कोई दस बार मौत की दहलीज़ों को हाथ लगा आया हूं। लेकिन चाहता हूं अंत में जब मुझे वह दहलीज़ लांघनी हो, उससे पहले मैं किसी विज्ञान की कोई ऐसी थाह पा लूं जो आज तक किसी ने नहीं पाई है···

कोई तपस्या मैं नहीं करूंगा, जो कुछ पाना है अपने इसी अध्ययन से पाना है। मेरी एक ही लगन है—टू रीछ बियांड टाइम ऐण्ड स्पेस···

हेमेन्द्र भगवती से सात सवाल

? : आपके नाम से मेरी वाक़फ़ियत बहुत पुरानी है, पैंतीस साल पुरानी, जब 'अकाशवाणी दिल्ली' अभी 'आल इंडिया रेडियो दिल्ली' हुआ करता था। मैं पंजाबी सैक्शन में स्टाफ़ आर्टिस्ट थी और आप हिन्दी टाक्स के इन्चार्ज होते थे। उसके बाद इतना जानती हूं कि आप स्टेशन डायरेक्टर हो कर हिन्दुस्तान के कई स्टेशनों पर रहे। लेकिन इस जानकारी की हदें सिर्फ़ यहीं तक महदूद हैं। आपके परा-शक्तियों के तजुर्बे के बारे में मैं बिलकुल नावाक़िफ़ हूं···

हे : मैं खुद ज़िंदगी के एक लम्बे अर्से तक इस शक्ति से नावाक़िफ़ रहा था। क़ुदरत, मेरे जन्म से ही मुझ पर किस तरह मेहरबान थी, मैं नहीं जानता था। मेरे पिता पी सी एस थे। उन दिनों एक पी सी एस का ठाठ आज के कमिश्नर से भी ज़्यादा होता था। वह बताया करते थे कि मेरे जन्म पर किसी संन्यासी ने उनसे कहा था कि यह बच्चा भविष्य-वक्ता होगा। एक बार उनके सामने किसी के क़तल का बहुत पेचीदा मुक़दमा पेश हुआ था, उस समय उन्हें सन्यासी की कही हुई वह बात याद आ गई। तब मैं मुश्किल से चार बरस का रहा होऊंगा, वह प्यार से मुझे गोद में बिठा कर पूछने लगे 'बेटा! यह जो मेरे पास क़तल का मुक़दमा आया है, क्या यह क़तल उसी आदमी ने किया है जिसे हिरासत में लिया गया है, या किसी और ने ?'

मैं बिलकुल नहीं जानता कि वह कौन-सी शक्ति थी जिसने मेरे बाल-मुंह से यह कहा 'नहीं, उस आदमी ने क़तल नहीं किया। जिसने किया है वह अपने गांव में बैठा हुआ है। आप उस गांव जाएं तो वह आपको चारपाई पर बैठा, हुक्का पीता हुआ मिलेगा।'

मुझे यह सब-कुछ याद नहीं, पिताजी बताते थे कि तब वह मेरठ में पोस्टिड थे, मैंने जिस गांव का नाम लिया था, वह पुलिस को लेकर उसी गांव गए थे और तफ़तीश करके उस आदमी को तलाश कर लिया जिसने क़तल किया था। वह जिस समय पकड़ा गया था, सचमुच एक चारपाई पर बैठा हुआ हुक्का पी रहा था।

मुझे अपने पिता का वह आलिंगन भी याद नहीं, जो वापस आकर उन्होंने मुझे किया था, और कहा था 'बेटा! तुम नहीं जानते, लेकिन आज तुमने एक

बेगुनाह आदमी को फांसी लगने से बचा लिया है···'

? : फिर वह पहला वाक़्या कौन-सा था, किसी परा-शक्ति का गवाह, जो सुना-सुनाया नहीं, आपका आंखों देखा वाक़्या था?

हे: अमृता जी ! मेरा बचपन बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण था। मैं कोई दो साल का था, जब मां नहीं रही। मेरे पिता ने दूसरा विवाह कर लिया। मैं छोटा-सा था जब मुझे होस्टल में डाल दिया गया था। मैं अपनी दूसरी मां का मन्ज़ूरे-नज़र नहीं था···

स्कूल की छुट्टियों का समय भी मुझे होस्टल में बिताना पड़ता था और सबसे कठिन समय वह होता था जब छुट्टियां खतम होने पर सारे बच्चे घरों से लौटते थे तो अपने-अपने घरों से कई तरह की मिठाइयां, मेवे और फल लेकर लौटते थे···मैं तब होस्टल का वह सुनसान कोना ढूंढ लेता था जहां मुझे कुछ भी दिखाई न दे···

आंखों के इस संयम ने धीरे-धीरे मेरे मन को भी मना लिया था कि मुझे न मिठाई अच्छी लगती थी, न कोई गिरी-मेवा और न कोई फल। मुझे याद है, जब एम० ए० कर लेने के बाद, मेरी नौकरी लगी थी, तब मैं ने ज़िंदगी में पहली बार कोई फल मुंह से लगाया था···

आदम ने तो फल चख लिया था, जब बहिश्त से निकाला गया था, लेकिन मैं उसे चखने से पहले ही बहिश्त से निकाल दिया गया था···

तब छठी या सातवीं में पड़ता था, जब कई बार कमरे के अकेलेपन से डर कर मैं अपने स्कूल के वार्डन के पास जाकर सो जाता था। उन दिनों की एक रात को, जब सोये-सोये रोने लगा था, वार्डन ने मुझे जगाकर चुप कराया और बहुत पूछा कि मैं सोते-सोते क्यों रोया। लेकिन मैंने उसे कुछ नहीं बताया। आज आपको बताता हूं कि उस रात मुझे एक सपना दिखाई दिया था कि मां दुर्गा शेर पर सवार होकर मेरे पास आई हैं, और मुझसे कह रही हैं—'बेटा ! मेरे पास आ जा।' मैं उनके पास नहीं जाता, कहता हूं 'मेरी कोई मां नहीं।' वह शेर से उतर कर मेरे पास आ गई और मुझे गले से लगा लिया। बोलीं 'तुम्हें जितना रोना है, आज रो लो ! आज के बाद तुम कभी मत रोना ! मैं तुम्हारी मां हूं···'

अमृता जी ! वह वाक़्या मेरा आंखों-देखा है। वह रोना भी मेरा आखिरी रोना था। उसी रात से मैंने मान लिया कि मां दुर्गा ने मुझे अपना पुत्र स्वीकार कर लिया है···

? : हेमन्द्र जी ! क्या देवी देवताओं के सब आकार इन्सान की साइकिक रिऐलिटी नहीं होते ?

हे : नहीं ! मैं मानता हूं कि जिन ऋषियों तपस्वियों ने यह आकार वर्णन किए थे, यह उनकी कल्पना के चमत्कार नहीं थे; उन्होंने मन की एकाग्र अवस्था में जो दर्शन किया था उसी का वर्णन किया था···

मैंने खीरभवानी से लेकर कन्याकुमारी तक माता के मंदिर देखे हैं।

आसाम में कामाख्या मंदिर तक भी गया हूं। मुझे इन जगहों पर अलौकिक अनुभव हुए हैं। कन्याकुमारी के मंदिर में इतनी भीड़ थी कि केवल दूर से ही देवी के दर्शन हो सकने संभव थे। लेकिन मैं दूर खड़े-खड़े इतना बेचैन हो गया था, मुंह से निकला 'मां! मैं तुम्हें मां नहीं मानता, तुमने पास बुलाकर मुझे आशीर्वाद नहीं दिया···' और अमृता जी! उस समय मेरी पीठ को एक अदृश्य हाथ ने छूआ—'आओ! पास आओ!···' और मैं इस तरह आगे होता गया, इर्द-गिर्द की भीड़ देखती रह गई। मुझे जैसे कोई हाथ पकड़ कर आगे ले जा रहा था···मैंने देवी के बिलकुल सामने बैठ कर 'सप्त श्लोकी' का पाठ भी किया, बीज मंत्र का भी··· पुजारी भी देखते रह गए···

इसी तरह खीरभवानी के मंदिर में मैंने नौ दीपक जलाए थे। जब वहां पहुंचा था, मेंह बरस रहा था, तेज़ हवा चल रही थी, और उस हवा में दीपक नहीं जलाए जा सकते थे। पुजारी ने कहा कि मैं बिना-जलाए-दीपक ही अर्पित कर दूं। लेकिन मैं आराधना में खड़ा हो गया। और आश्चर्यजनक घटना यह घटी की पल मात्र के लिए आंधी के समान चल रही हवा थम गई। मैंने पूरे नौ दीपक जलाए और देवी को अपर्ण कर दिए। तब चकित पुजारी ने मेरी बांह पकड़ ली—'आप कौन हैं?' मैंने विनम्रता से कहा 'मैं अपनी मां का एक गरीब बेटा हूं, और कुछ भी नहीं···'

? : आप ने ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान किससे पाया है?

हें : वैसे तो सिर्फ़ साधना से पाया है, फिर भी बीकानेर के आचार्य राज को मैं अपना गुरु मानता हूं। वह दिव्य व्यक्तित्व के मालिक हैं। उनके सात पुत्र हैं, सातों बहुत अच्छे पदों पर हैं, लेकिन आचार्य किराये के एक कमरे में रहते हैं, और जमीन पर सोते हैं। उन्हें आदेश हुआ था कि 'जिस प्रकार सूरज के रथ के सात घोड़े होते हैं, तुम्हारे घर सात पुत्र होंगे, लेकिन किसी पुत्र से किसी तरह का सुख स्वीकार मत करना।' मैं अपनी ज़िंदगी का देनदार हूं, जिसने मुझे कई दिव्य व्यक्तित्व के मालिक संन्यासियों का संपर्क करवाया है···कामाख्या के एक तांत्रिक ने मुझसे कहा था कि तुम तंत्र-शक्ति कभी नहीं पा सकोगे, इसलिए सिद्धियां हासिल करने वाले रास्ते पर मत पड़ना। तुम्हें जो कुछ पाना है, मां के पूजन से पाना है। तुम ज्योतिष, शास्त्र के ज्ञाता होगे, लेकिन सिर्फ़ मां के पूजन से। इसलिए मैंने कभी तंत्र-शक्ति के लिए साधना नहीं की। मेरे पास कोई सिद्धि नहीं है। जो कुछ है वह स्वत: प्राप्त हुआ है···

एक बार रेलगाड़ी की प्रतीक्षा में मैं एक बैंच पर बैठा हुआ था कि एक आदमी मेरे पास आकर खड़ा हो गया। मेरे हाथों की ओर देखता रहा, फिर बोला—'आप का नाम हेमेन्द्र है?' मैंने 'हां' कहा तो वह बोला 'आपकी हथेली पर स्वास्तिक का जन्म से चिह्न है?

मैं उस समय तक नहीं जानता था कि मेरे हाथ पर हाथ की लकीरों ने

स्वास्तिक का चिह्न बनाया हुआ है। मैं हैरान हुआ तो उसने कहा—'मेरे सिर पर हाथ रखें ! मैं बरसों से बीमार हूं, आप हाथ रखेंगे तो मैं अच्छा हो जाऊंगा…'

उसी आदमी ने मुझे बताया कि नागपुर के निकट किसी मंदिर के संन्यासी ने उससे कहा था कि जाओ ! रेलवे स्टेशन के एक बेंच पर बैठा हुआ तुम्हें एक आदमी मिलेगा, जिस का नाम हेमेन्द्र है, जिसके एक हाथ में अंगूठा नहीं है, और जिसकी एक हथेली पर स्वास्तिक का चिह्न है। उसे यह वरदान है कि वह सात इन्सानों के सिर पर हाथ रख कर उन्हें निरोग कर सकता है, सात में से तीन मर्द होंगे, दो औरतें और दो बच्चे।

वह रेलवे स्टेशन पर मिलने वाला पहला आदमी था, जिसके सिर पर मैंने हाथ रखा था और वह स्वस्थ हो गया था। उसके बाद मैं इस शक्ति को पांच बार और आज़मा चुका हूं। सब मिलाकर छह बार। अब सिर्फ़ सातवीं बार बाकी है, किसी बच्चे को निरोग करने वाली…

? : हेमेन्द्र जी ! श्री अरविंद की जीवनी में रूहों को बुलाकर उनसे बात करने के तजुर्बे का ज़िक्र आता है, किसी बैठक में लोकमान्य तिलक तक की मौजूदगी का ज़िक्र भी है, और यह भी कि एक बार परमहंस रामकृष्ण की आत्मा को भी बुलाया गया था। किसी परा-शक्ति का यह पहलू आपके तजुर्बे में भी शामिल है ?

हे : शामिल है नहीं, शामिल था। मैं लोगों की मुश्किलों को हल करने के लिए यह साधन इस्तेमाल किया करता था, लेकिन धीरे-धीरे मेरा सिर भारी रहने लगा था। एक दिन महा शिव की आराधना करके, उन्हें बुलाना चाहा था, वह आए भी और कमरे की हवा का एक टुकड़ा जैसे हवा से अलग होकर एक आकार धारण करता हुआ लगा था, जब अपने अंतर से यह अहसास हुआ कि मुझे इस रास्ते पर नहीं पड़ना चाहिए। बाद में किसी संन्यासी ने मुझे देवी माता की शपथ दिलाई थी कि मैं यह रास्ता त्याग दूं। अपनी शक्ति को इस राह पर लाना, शक्ति का दुरुपयोग है…

मैंने तो अपना नाम भी मां को अर्पण कर दिया है—अब सिर्फ़ एच०एन० भगवती कहलाता हूं। किसी की जन्म-पत्री बांचता हूं, पहले देवी माता को संबोधन करता हूं—मां ! तुम्हारी शक्ति का अगर मुझसे दुरुपयोग हो जाय, तो मुझे क्षमा कर देना…

? : हेमेन्द्र जी ! मेरी ज़ात क़लम है। सो, जिनकी भी ज़ात क़लम है, उनके बारे में जानना चाहूंगी कि शायरों और अदीबों के कौन से घरों में कौन से ग्रह होते हैं, या किन घरों पर किन ग्रहों की दृष्टियां, जो उनके मन-मस्तक को हमेशा के लिए क़लम से जोड़ जाती हैं ?

हे : अमृता जी ! मेरे अनुभव में यह आया है कि राशि अनुसार अकसर वृषभ, कर्क, तुला, धनु, और मीन राशि वाले शायर या शायराना स्वभाव के होते हैं। और इसी तरह वृषभ, मिथुन, कर्क, धनु और तुला लग्न वाले शायर और अदीब

होते हैं। लेकिन राशि में या लग्न में, बुध या बृहस्पति या चंद्र जरूर हो। राशि या लग्न पर शुभ ग्रहों की दृष्टि भी बहुत महत्त्व रखती है। पुरुष राशि में बुध ग्रह हो तो इन्सान लेखक, प्रकाशक या संपादक बनता है।

तीसरे घर में बुध, दूसरे में शुक्र हो, और इन दोनों घरों में से किसी एक घर में सूर्य हो और धनु, कर्क या कन्या लग्न हो, तो इन्सान ज्योतिष शास्त्र में या लेखन-क्षेत्र में प्रवीण होता है।

चौथे घर का बुध भी लेखक बनाता है। पर छठे घर में अगर स्त्री राशि का बुध हो तो इन्सान को उम्र के आखिर में दिमाग़ी तकलीफ़ हो जाती है। बुध ग्रह पर अगर किसी क्रूर ग्रह की दृष्टि हो, तब भी ऐसी तकलीफ़ का संकेत होता है।

जिसके नौवें घर का बुध, मिथुन, तुला या कुंभ राशि का हो, वह संपादक, प्रकाशक या लेखक बनता है, और जीवन पर्यन्त अपना अध्ययन जारी रखता है।

बारहवें घर के बुध पर अगर किसी नीच ग्रह की दृष्टि न हो, तो वह इन्सान बहुत विद्वान होता है। शायरी या संगीत में नाम पैदा करता है—इतना, कि मृत्यु के बाद भी उसका नाम अर्से तक जीवित रहता है।

सूर्य और बुध अगर इकट्ठे हों और साथ ही उन पर किसी नीच ग्रह की दृष्टि न हो, तो इन्सान को अपने और दूसरे देशों में भी मान-सम्मान मिलता है। पांचवें और नौवें घर का बृहस्पति भी बहुत सम्मान दिलाता है। दसवें घर का बृहस्पति शुभ दशा में हो तो कवि, साहित्यकार और विद्वान के रूप में व्यक्ति को राज दरबार से आदर मिलता है।

लग्न में, या सातवें, या बारहवें घर में चन्द्रमा हो तो वह कल्पनाशील, विद्वान या कवि बनाता है।

इसके अतिरिक्त दसवें घर का वृहस्पति अगर लग्न में आ जाए तो कल्पना-शक्ति देता है। ऐसे कल्पनाशील कवि पर, बड़ी उम्र में लक्ष्मी भी मेहरबान होती है। दसवें घर का स्वामी लग्न या पंचम में हो और पंचमेश से उस का संबंध भी हो तो संसार का यश उसके घर चलकर आता है···

और बारहवें घर का स्वामी अपने ही घर में हो; खास कर चंद्रमा, तो वह मनुष्य, चाहे किसी जाति का हो, महान पंडित बनता है···

?: यानी बारहवें घर में कर्क राशि हो और कर्क राशि का मालिक चंद्र भी वहीं बैठा हो, तो इन्सान की ज़ात कलम की ज़ात हो जाती है···अब, हेमेन्द्र जी ! मैं सातवां सवाल नहीं पूछूंगी। चाहूंगी कि आपकी आराधना के समय जो भी कोई सवाल आप के मन में कभी जागा है, आप वही सवाल सामने रखकर उसका जवाब दें !

हे: इससे पहले सवाल के जवाब में इतना ज़रूर कहना चाहता हूं कि मैंने जितने भी ग्रहों का संबंध कलम से जोड़ा है, वह मैंने सैकडों पत्रियों के अध्ययन से प्राप्त

अनुभव कहा है। इसके भी कई अपवाद हो सकते हैं। ज्योतिष शास्त्र का संबंध इतना पढ़ने से नहीं, जितना गुणने से है। इस गुणने में जीवन का आचरण भी शामिल होता है और किसी देवी-देवता की आराधना भी। साथ में यह भी कहना चाहूंगा कि विद्या की इस शक्ति के आगे एक परा-शक्ति है जिस तक किसी ज्योतिषी की पहुंच नहीं होती।

और अब सातवां सवाल? याद आता है कि मैं रोज़ चालीस सिगरट पिया करता था। धीरे-धीरे छाती में कुछ भारीपन रहने लगा था। ऊपर से रिटायर हो गया तो सिगरट के खर्च फ़िज़ूलखर्ची लगने लगा था। मैंने कई बार मन में सोचा कि सिगरेट नहीं पीना चाहिए, लेकिन आदत छोड़ी नहीं जा रही थी। एक बार वैष्णो देवी गया तो वह चढ़ाई चढ़ना कठिन हो गया। मेरा सांस बहुत फूल गया था…

फिर एक दिन छाती में इतनी पीड़ा हो रही थी कि मैं डाक्टर से दवा लेने गया हुआ था, जहां बैठे हुए मैंने देवी का चिन्तन किया और कहा—'मैंने मन में कई बार जो कुछ सोचा था, लगा था कि आप सुन लेंगी। लेकिन आपने सुना नहीं। आप मेरा सिगरट पीना क्यों नहीं छुड़ा देतीं? आज आप से सीधे कह रहा हूं।'…अमृता जी! वह घड़ी, वह पल, न जाने कैसा था, मेरे अंदर एक अजीब शक्ति की लहर आ गई, जो लहू की तरह मेरी नसों में चलने लगी, और मेरा हाथ अपने आप मेरी जेब में से सिगरट की भरी हुई डिबिया निकाल लाया, और उसने वह डिबिया खिड़की के बाहर फेंक दी। उस घड़ी के बाद आज तक मैंने सिगरट नहीं पी है…यह एक सवाल था जो मैंने अपनी देवी के सामने रखा था, पर इसका जवाब मिल चुका है। वैसे भी यह बहुत छोटा-सा और निजी सवाल था। मेरा असल सवाल वह है जो मेरी आराधना के समय अब कई बार मेरे सामने आ खड़ा होता है। खास कर रात को दस बजे के बाद की आराधना के समय। वह मेरे देश की हालत का सवाल है। उसका जवाब मुझे एक दृश्य की सूरत में दिखाई देता है—वह दृश्य उस समय मेरे ज़ेहन में एक आकार धारण कर लेता है—नहीं जानता, उसका ज़िक्र मुझे करना चाहिए या नहीं…लेकिन इस समय उसका ज़िक्र अगर अचानक मेरे होंठों के पास आकर खड़ा हो गया है, तो ज़रूर देवी मां की इच्छा होगी कि मैं उसका ज़िक्र कर दूं…

मैं जब अपने देश की हालत से बहुत परेशान हो जाता हूं, तब आराधना के समय मुझे एक अहसास होता है कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान फिर एक हो जाएंगे। साथ ही दिखाई देता है कि एक बहुत सुन्दर आकृति वाला ब्रह्मचारी संन्यासी है, जो राज्य का अधिकारी बनेगा, और हिन्दुस्तान का प्राचीन और गम्भीर फ़लसफ़ा सारी दुनिया में सम्मानित होगा…

यह सवाल भी मेरा है, जवाब भी मेरा। लेकिन यह सच होगा? कब? मैं नहीं जानता…

कृष्ण अशांत से सात सवाल

? : कृष्ण जी ! अग्नि, वायु और सूरज—इन तीनों शक्तियों को त्रिमूर्ति कहा जाता है। आपके तीन हुनर भी आपको त्रिमूर्ति बनाते हैं। आपका एक हुनर वैराग्य या साधना है, जिसके लिए आपने भगवा वेष को धारण कर लिया था आपका दूसरा हुनर ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन है और आपका तीसरा रूप बिलकुल आधुनिक शायर का है। पूछना चाहती हूं कि इनमें से कौन-सा पहलू आपकी नज़र में आपकी शख़्सियत का सबसे अहम पहलू है ?

कृ : लगता है—मन की मिट्टी में तीनों बीज कुदरत ने एक ही समय में बो दिए थे। पानी और धूप के असर का कोई फ़र्क़ होगा कि किसी एक समय में बाहर सिर्फ़ एक ही फूल खिला हुआ दिखाई देने लगा। भगवे वेष वाला समय जब मेरी और लोगों की आंखों के सामने आया, तब भी शायरी का बीज मेरे अंदर था। साथ ही ज्योतिष का अध्ययन मेरे मन का आकर्षण बना हुआ था। पर बाहर दिखाई देने वाला सिर्फ़ मेरा भगवा चोला था।—उसके बाद समय आया जब मन की मिट्टी में रोज़ शायरी के फूल खिलने लगे। पर मैं जानता हूं कि दूसरे दो पहलू उस समय भी मेरे सामने हाज़िर-नाज़िर रहे, पर शायरी की ओट में खड़े होकर। फिर समय आया जब ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन मेरे दिनों की लगन भी बन गया, रातों की भी। एक ही आसन मुझे थामकर बैठ गया। और साथ ही यह भी सच है कि मन का वैराग्य भी मन के एक कोने को संभालकर बैठा हुआ है और समय-समय पर शायरी, मेरा क़लम वाला हाथ पकड़कर बैठ जाती है···

? : भगवे वेष की पृष्ठभूमि में कोई सामाजिक और आर्थिक उदासियां थीं, या उस काल को आप किसी पिछले जन्म की लगन का अंग समझते हैं ?

कृ : सामाजिक और आर्थिक हालतें एक लम्बा सिलसिला था, जो मैं जन्म से देखता आया था। उसमें कोई नया हादसा हुआ होता, तो सोच सकता था कि मन की रुचि को मोड़ने में शायद उसका हाथ होगा। पर मैं तो उन हालतों में रचा-बसा था। फिर भी अगर कोई अंतर्वृत्ति मुझे योग के रास्ते पर खींचती थी तो उसे किसी दिव्य शक्ति का दख़ल ही कह सकता हूं। पूर्वजन्म के किसी संस्कार की कड़ी भी कह सकता हूं।

भगवा वेष अंग से लगाने से पहले सिर्फ़ एक जिज्ञासा थी, योग के बारे में जानने की। कई किताबें पढ़ीं, और योग साधना करने लगा। प्राणायाम से जो मन की अवस्था बनी, वह एक प्राप्ति कह सकता हूं। मन-मस्तक जैसे मेरे अख़्तियार से हो गए थे। समाधि की अवस्था में समय की सीमा, असीम बनने लगी थी। वह अनुभव शब्दों की पकड़ में नहीं आता। पर वही अनंतता का अनुभव था, जिस के सामने घर-समाज के सीमित रिश्ते कहीं पीछे छोड़जाने को जी करता था···

एक बात याद आती है कि जब मैं पांच-छः साल का था, अपने दादाजी के छोटे भाई काशीराम जी से मेरा कोई आंतरिक स्नेह जाग उठा था। उनके घर का और हमारे घर का पिछवाड़ा एक था। मैं खेलते-खेलते, दीवार के गिर्द घूमकर उनके पास जा बैठता था। वह अपने समय के एक विद्वान् कहे जा सकते हैं। योग साधना भी शायद उनका गुप्त कर्म था। क्योंकि वह हर बरस तीन-चार महीने के लिए घर त्याग कर कहीं अलोप हो जाते थे। अलिफ़लैला से लेकर गरुड़ पुराण तक की कहानियां मैंने उनसे ही सुनी थीं। उनके अपने विचित्र अनुभव भी उनके मुंह से सुने थे कि शिव आराधना करते समय कई बार रात को एक सांप आकर उनके गिर्द कुंडली मार लेता है···

शायद बचपन का कोई प्रभाव मेरी जवानी पर भी पड़ गया हो, पता नहीं···

? : कृष्ण जी ! योग साधना के समय का आपका अनुभव वैसे तो लफ़्ज़ों की पकड़ में नहीं आ सकता, पर उस समय की किसी बाहरी घटना का ज़िक्र करेंगे ?

कृ : जिन दिनों मैं योग साधना किया करता था, किसी प्राप्ति का अहसास हुआ करता था, लेकिन वह प्राप्ति अपने से भी पहचानी नहीं जाती थी। फिर कुछ अजीब घटनाएं हुईं। बी० ए० करने के बाद मैंने भगवा वेष धारण किया था। सिर्फ़ एक साल और फिर भगवा रंग मस्तक में धारण करके मैंने वह वेष उतार दिया था। दर्शन शास्त्र का एम० ए० करने में लग गया था। उन्हीं दिनों की बात है कि एक बार बस में कहीं जा रहा था कि उसी बस में बैठी एक साधुनी औरत उठकर मेरे पास आ गई, और उसने मेरा नाम पूछा। नाम बताया तो वह मेरे गिर्द एक बेल की तरह लिपट गई "तुम ही तो मेरे कृष्ण हो। तुम्हें ही तो इस जन्म में खोज रही हूं···" मैंने उसकी बात को सहज लफ़्ज़ों में टालकर, उसे अपने पास की सीट पर बिठा लिया। पर एक हैरानी थी, जो मुझसे सही नहीं गई। अगली किसी जगह पर जब बस रुकी, तब मैं चढ़ने-उतरने वाले लोगों की भीड़ में मिल कर, बस से उतर गया···पता नहीं यह कर्म मुझसे ठीक हुआ या नहीं, पर यह एक अजीब घटना थी कि उस साधुनी को मेरे चेहरे में अपने कृष्ण का मुख दिखाई दिया था···

और एक और अजीब घटना भी उससे अगले बरस हुई जब मैं एम० ए०

फ़ाइनल की तैयारी कर रहा था। घर की ग़रीबी का तक़ाज़ा था कि मैं एक साल पढ़ाई छोड़कर एक गांव के स्कूल में पढ़ाने लगा। यह गांव था—भुन्नर हेड़ी। वहां स्कूल के पते पर एक दिन एक ख़त आया कि इस स्कूल में कृष्ण नाम का कोई अजीब साधू-जैसा आदमी है? वह ख़त सारे मास्टरों ने पढ़ा, क्योंकि ख़त किसी आदमी के नाम नहीं था, स्कूल के नाम था।

हम सब मास्टरों ने बात को हंसी में लिया। कई मुझसे मज़ाक़ भी करने लगे कि किसी को तुमसे अपनी बेटी ब्याहनी है! और इसी हंसी-हंसी में एक मास्टर ने उस ख़त का जवाब लिख दिया कि हां, यहां कृष्ण नाम का एक आदमी स्कूल मास्टर है। उसके तीन दिन बाद एक आदमी स्कूल आया। स्कूल बंद होने का समय था। और मैं हैरान हुआ कि हम सब स्कूल मास्टर इकट्ठे खड़े हुए थे, लेकिन उस आदमी ने आगे आकर मेरे पैरों को इस तरह हाथ लगाया, जैसे वह मुझे पहचानता हो।

ख़ैर, मैं उसे साथ लेकर अपने कमरे में आ गया। मेरी अजीब हालत थी कि इस आदमी से बात कैसे शुरू करूं। मैंने उसे चाय पिलाई, और झिझकते-झिझकते पूछा कि उसे मेरा पता कहां से मिला था, और उसने मुझे पहचाना किस तरह? उसका जवाब एक नया अचंभा था। वह श्रद्धा से फिर मेरे पैरों पर झुक गया, और बोला "आप सब जानते हैं! मेरा इम्तहान क्यों लेते हैं?"

पता नहीं लगता था कि मैं उसका इम्तहान ले रहा हूं, या वह मेरा इम्तहान ले रहा है।

और इस मुश्किल से निकलने के लिए मैंने कुछ सहज होकर कहा "ख़ैर मैं तो जानता हूं, पर मैं आपके मुंह से सुनना चाहता हूं।"

तब उसने बताया "मैं अपने गांव के जोहड़ पर, दातुन करके, हाथ-मुंह धो रहा था, कि जोहड़ के पानी में आपकी सूरत दिखाई दी। मैंने हैरान होकर इर्द-गिर्द देखा कि यह किसकी परछाईं पड़ रही है। लेकिन आस-पास कोई आदमी नहीं था। पानी में उसी तरह आपका चेहरा दिखाई दे रहा था। साथ ही एक आसमानी आवाज़ आई कि यह कृष्ण नाम का आदमी तुम्हारी मुश्किल हल कर सकता है। जाओ, भुन्नर हेड़ी के स्कूल में जाकर उससे मिल लो। तभी मैंने स्कूल को ख़त लिखा था…"

उस समय मेरे रोम-रोम में एक हैरानी फैल गई। पर उस की समस्या क्या थी, मैं उसका अंतर्यामी नहीं था। उससे ही बातें करके उसकी समस्या पूछी तो वह फिर अड़ गया कि आप सर्वत्र हैं, मुझ से क्यों पूछते हैं।

उस समय वह मुझ में किसी सर्वज्ञ को खोज रहा था और मैं आसमान की ओर मुंह करके शून्य में से किसी सर्वज्ञ को तलाश कर रहा था…

फिर उसने, सहम श्रद्धा और संकोच के मिले-जुले भाव के साथ बताया कि उसके बराबर वाले गांव में एक लड़की है, विमला, जिसके साथ वह ब्याह करना

चाहता है, वह लड़की से पच्चीस बरस बड़ा है, इसलिए लड़की के मां-बाप उससे लड़की का रिश्ता नहीं करते।

उसने कहा "मैं उस लड़की के बिना जिंदा नहीं रह सकूंगा।" पर साथ ही उसने कहा "या तो मुझे वह लड़की दिला दीजिए, या कोई ऐसा मंत्र फूंकिए कि वह मेरे मन से निकल जाए…"

उस समय सचमुच ही बड़े सहज से मेरे मुंह से निकल गया "जा, तेरी इच्छा पूरी होगी।"

मैं आज तक नहीं जानता कि यह बात मेरे मुंह से क्यों निकली। न मैं यह जानता हूं कि उस आदमी की इच्छा किस तरह पूरी हुई—लड़कीकी प्राप्ति से, या उसका मन इच्छा-मुक्त हो जाने से। पर एक अहसास-सा है कि दोनों में से एक बात ज़रूर हो गई होगी।

? : कृष्ण जी ! कभी यह भी महसूस किया था कि शायरी के बूटे को योग साधना का पेवंद लग गया है ?

कृ : योग साधना पूरे मस्तक को घेरकर बैठती है और शायरी भी मस्तक की मिट्टी में से पैदा होती है। चेतन मन से भी जो कुछ लिखा, उसमें अचेत मन ने योग साधना के कई प्रतिबिंब मिला दिए। जैसे एक नज़्म की अंतिम पंक्तियां हैं "अगर अक़्ल की नज़र मद्धिम है, तो कुछ बनेगा नहीं। दूरबीनों से माया-जाल को देखने की कोशिश कुछ नहीं है, एक माया-जाल ही है।"

कई बार दुनियावी मुश्किलों में से गुज़रते हुए मैंने अपने आप को एक दर्शक के तौर पर देखा है। ऐसे ही किसी कठिन समय की एक नज़्म है :

फिर समय आया है मुंह से झाग छोड़ता
अपने नाखूनों के नेज़े तेज़ करके
पर क्या फ़र्क़ पड़ता है मुझे
मैं तो केवल रूह-सा
मस्तक की चेतनता-सा
योगी के कठोर हठ जैसा आदमी हूं
केवल जिस्म थोड़े हूं…

? : पर कृष्ण जी ! आपकी कई नज़्मों में एकदम समाजी और सियासी चेतनता है, और इन्सानी अहसास के उस क़त्ल की संवेदना है, जो किसी अख़बार की ख़बर नहीं बनता। जैसे—छतों, फ़ुटपाथों, मंदिर की सीढ़ियों, और दुर्गंध से भरी नालियों में तड़प-तड़पकर मरने वाले दिन की मौत का ज़िक्र। आपकी ऐसी नज़्मों पर न किसी वैरागी मन का साया है, न तक़दीरों का फ़ैसला करने वाले ज्योतिष शास्त्र का। इस पहलू का आपने अपने दूसरे दोनों पहलुओं से अछूता कैसे रखा हुआ है ?

कृ : एक ही समय में मुझे दुनिया से उपरामता भी है, और दुनिया से अतिशय प्यार

भी, और यह बात भी मेरे मन का द्वन्द्व नहीं बनी। इसीलिए लोगों के दुख-सुख मुझे अपने दुख-सुख लगते हैं। एक ओर मैं अपनी पीड़ा का दर्शक भी हो सकता हूं, और दूसरी ओर पराई पीड़ा भी मेरी पीड़ा हो जाती है। एक नज़्म की कुछ पंक्तियां सामने रखना चाहूंगा :

मैं इस सदी के पेट से
बंदरिया के मरे हुए बच्चे की तरह चिपटा हुआ हूं
यह मेरा अधिकार है
मुझे उस दिन तक—
किसी अंधेरी गली, पगडंडी या गंदी नाली में नहीं फेंका जा सकता
जब तक इस सदी की कोख दोबारा हरी न हो जाए···

? : आपने एक दिन ज़िक्र किया था कि ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन करते समय एक कोई नायाब किताब आपके हाथ लगी है। इल्म की इस प्राप्ति के बारे में कुछ कहेंगे ? साथ ही यह भी पूछ लूं कि अभी मेरे सामने आपने विस्की के गिलास की कुछ बूंदें हाथ से खिड़की के बाहर छिड़की हैं, क्या यह किसी ग्रह को अर्पण की हैं ?

क : मार दिया आपके इस सवाल ने। बात यह है कि पिछले साल से शराब-मांस न खाने का व्रत रखा हुआ था। पर जो नायाब किताब मेरे हाथ लगी है, उसके अध्ययन ने मुझे उस व्रत से मुक्त कर दिया है। उसके अनुसार ही मैंने विस्की के गिलास की पहली बूंदें शनि देवता को अर्पित की हैं।

किसी ग्रह को शराब अर्पण करने का ज़िक्र साधारण ज्योतिष में बहुत कम आता है। पर 'लाल किताब' प्रचलित ज्योतिष के आम उसूलों पर नहीं चलती, यह अपने आप में एक ख़ास शास्त्र है। मैंने बहुत वर्ष प्राचीन किताबों के अध्ययन में लगाए, पर कई सवाल मन में उठते थे, जिनका जवाब नहीं मिलता था। इस 'लाल किताब' के बारे में सुना हुआ था, पर उसकी प्राप्ति नहीं हो रही थी। पता लगा कि जिसने लिखी थी, छपवाई थी, वह किताब को कभी बेचता नहीं था, सिर्फ़ किसी अधिकारी को देता था। उसका पता खोजने लगा, तो एक बदनसीबी सामने आई कि वह दो बरस पहले इस दुनिया से चला गया था। मैं अपने आपको अधिकारी ज़रूरी महसूस करता हूं, पर वह हाथ कहां से पाता, जिनके सामने मैं अधिकारी होने का दावा कर सकता। फिर शायद उसी ने मेरा अधिकारी होना मान लिया, और मेरी तलाश को रास्ता दिखा दिया। उस किताब की किसी के पास होने की खबर मिल गई, और मैंने चौबीस घंटे के लिए उसे उधार लेकर, उसकी फ़ोटो-स्टैट कापी करवा ली···

आपने इस इल्म का हासिल पूछा था। ज्योतिष के प्रचलित ग्रंथों में ग्रहों की गति के अनुसार होने वाली घटनाओं के बारे में काफ़ी ज्ञान हो सकता है, पर उन ग्रंथों में ग्रहों की मंदी दशा के बारे में कोई ठोस उपायों का ज़्यादा ज़िक्र नहीं

मिलता। यह किताब मिलने के बाद मुझे नई रोशनी मिली है। इस किताब के अनुसार बहुत तरह की गिनती-मिनती की ज़रूरत नहीं पड़ती, और ग्रहों की हालत के अनुसार पिछली और होने वाली, घटनाएं काफ़ी हद तक समझ की पकड़ में आ जाती हैं।

अगर किसी की जन्म-कुंडली न भी हो, तब भी उसके मकान का नक़्शा तक बताया जा सकता है। इस किताब की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कई बीमारियों और मुश्किलों के उपाय बहुत ही साधारण-सा ख़र्च करके किए जा सकते हैं। मेरे पास बहुत लोग आते हैं जिनकी मुश्किलों के वक़्त मेरे बताए हुए उपाय बहुत सही साबित हुए हैं।

? : पुराणों में सात समुद्र माने गए हैं। सातों प्रतीकात्मक हैं, एक दूध का, दूसरा दही का, तीसरा घी का, चौथा गन्ने के रस का, पांचवां शहद का, छठा मीठे पानी का, और सातवां खारे पानी का। कलाकार की प्रसिद्धि छः समुद्रों जैसी होती है। जो लोग जानते हैं, पर उसकी जद्दो-जहद का दर्द खारे पानी वाले समुद्र जैसा होता है, जिसकी एक भी घूंट कोई नहीं भर सकता। मेरा सातवां सवाल, खारे पानी वाले सातवें समुद्र के बारे में है, जिसे सिर्फ़ आप जानते हैं, और उस के जवाब के लिए आपको ख़ुद इस समुद्र का मंथन करना है।

कृ : यह मंथन समुद्र का है जिसे देवताओं ने शायद बहुत जल्दी मथ लिया था, और शिव ने इससे प्राप्त ज़हर के अंश को अपने कंठ में रख लिया था। लेकिन मैं कोई देवता नहीं हूं। और इसीलिए इस सातवें समुद्र का मंथन शायद उम्र के अंतिम सांस के साथ ही पूरा होगा या शायद इसे पूरा करने के लिए चौरासी लाख योनियों में से अभी कई लाख योनियां और भोगनी पड़ेंगी।

ज़िंदगी में दुख आए, सुख आए, यह साधारण बात है। सबकी ज़िंदगी में आते हैं। लेकिन मेरे लिए ज़िंदगी के इस समुद्र का मंथन, ख़ासकर पिछले कुछ सालों से, ज़िंदगी के अर्थ खोजने पर केंद्रित हो गया है। शायद योग-साधना, शायरी, ज्योतिष अलग-अलग किस्म की मथानियां हैं, जिनकी अंतिम प्राप्ति एक ही मंथन है।

पिछले कुछ सालों से ज्योतिष के साथ मुझे आत्मा, हमारा यह जन्म, और जन्म के बाद आत्मा या रूह के साथ घटने वाली घटनाएं, यानी इस शरीर को त्यागने के बाद आत्मा के हश्र के बारे में अध्ययन करने की लगन भी लगी हुई है। मैं अभी तक इस बारे में किसी पक्के नतीजे पर नहीं पहुंचा हूं। लाल किताब में ज्योतिष का एक कांड पितृ ऋण के बारे में है। इसके अनुसार किसी के बाप, दादा, पड़दादा तक का किया हुआ कोई कर्म भी आदमी को भोगना है। दूसरी ओर हमारे अपने भी पिछले जन्म के संस्कार होते हैं। प्राचीन ग्रंथों में यहां तक ज़िक्र आता है कि हम जन्म लेने के लिए मां का गर्भ भी अपनी मर्ज़ी से चुनते हैं और हमारी यह मर्ज़ी हमारे उस समय के जन्म से पहले जन्मों के कर्मों के आधार पर बनती

है। ज़िंदगी की इन हदों के बारे में सोचकर ख़याल आता है कि शायद हमारा कोई भी कर्म पूरी तरह हमारी मर्ज़ी पर निर्भर नहीं करता। ज्योतिष के अध्ययन से यह विचार और भी दृढ़ हो जाता है। कई बार यह सब कुछ मन को बड़ी निराशा देता है, पर लाल किताब के अध्ययन के बाद मुझे ऐसे लगता है कि हमारी ज़िंदगी शायद इतनी सीमित दीवारों में कैद नहीं है। सिर्फ़ ज़िंदगी के दृष्टिकोण को बदल कर जीने की ज़रूरत है। अगर किसी राहू जैसे राक्षस ग्रह के क्रोध से बचने के लिए भी कोई उपाय करना हमारे बस में है, तो फिर शायद पिछले संस्कारों, और ज़िंदगी को पिछले या इस जन्म की ग़लतियों के प्रभाव को दूर करना भी हमारे हाथ में है।

सो मैं ज़िंदगी के इन भेदों के बारे में ही सातवें समुद्र का मंथन कर रहा हूं। चाहता हूं—हाथों में यह सामर्थ्य आए कि इस मंथन में से मैं कोई सत्य खोज सकूं।

धूसवां साइमी से सात सवाल

? : धूसवां साहब ! मैं आप के नेपाल का थोड़ा-सा अदबी इतिहास जानती हूं, मसलन यह कि 1860 में नेपाल का पहला छापाखाना खुला था, पहला अखबार "गोरखा पत्र" से 1901 में शुरू हुआ था। पहला व्याकरण 1912 में छपा था और नेपाली साहित्य की उम्र 1920 से गिनी जाती है। नेपाल की उप-भाषाएं कई हैं, लेकिन मुख्य भाषाएं चार हैं—नेपाली, मैथिली, नेवारी और भोजपुरी। आज आप नेवारी के माने हुए लेखक हैं, लेकिन यह बताइये कि 1940 तक राज सरकार की ओर से नेवारी जबान में कुछ लिखने पर सख्त मनाही क्यों थी ?

धू : नेवारी भाषा का पहला लेखक चित्तधर हृदय हुआ है। उसकी कलम को प्रणाम करके मैं उसी मनाहियों वाले युग की दास्तान कहता हूं जिसे इतिहास में "जेल युग" कहा जाता है। उस काल में नेवारी में लिखने वाले को हथकड़ियां और बेड़ियां डाल कर जेल में डाल दिया जाता था। हमारे चित्तधर ने जेल भी भुगती, लेकिन नेवारी को छोड़कर किसी और भाषा में लिखना स्वीकार नहीं किया। वह ससुराल की ओर से कुछ अमीर आदमी था, इसलिए कभी अपनी जमीन बेचकर और कभी अपनी पत्नी के गहने बेचकर, किताबें छपवाता रहा। उसकी एक किताब का नाम है "अनाथ खन" यह अनाथ शब्द उसने बहुत दर्द से नेवारी भाषा के लिए लिखा था···।

? : नेपाल की कुमारी-पूजा दुनिया की सबसे अलौकिक रस्म है, जिसके अनुसार पांच साल की बच्ची को मंदिर में रखकर तब तक पूजा जाता है जब तक उसमें एक जवान—सुंदरी बन जाने के आसार दिखाई नहीं देते और वह बच्ची सिर्फ नेवार वंश में से चुनी जाती है। इस इतिहास की पृष्ठ भूमि क्या है ?

धू : नेवारों में कई जातियां हैं, लेकिन कुआंरी सिर्फ साक्य वंश से चुनी जाती है। साक्य लोग सोने का व्यापार करते हैं, उच्च जाति के नहीं माने जाते लेकिन वह सोने के कण जैसी लड़की उसी वंश से ली जाती है···कहा जाता है कि प्राचीन काल में हर राजा देवी का आराधक होता था और देवी साक्षात् रूप में आकर रोज राजा के साथ पासा खेलती थी। यह तेरहवीं शताब्दी से अट्ठारहवीं शताब्दी तक होता रहा। 1769 की घटना है, जब उस काल का राजा एक रात देवी के

साथ पासा खेल रहा था, उसके मन में एक वर्जित विचार आ गया। देवी की सुंदरता पर मोहित राजा उसकी काया की कामना करने लगा तो देवी ने रुष्ट होकर कहा कि अब वह कभी भी साक्षात् रूप में दर्शन नहीं देगी। राजा के प्रायश्चित करने पर दया कर उसने कहा कि अब से अगर हर काल का राजा एक बाल-कन्या की पूजा करेगा, तो वह उसी बाल-कन्या के रूप में राज्य पर कृपालु रहेगी। उसने ही यह आदेश दिया था कि पूजा के लिए जो भी कन्या चुनी जाएगी, वह केवल साक्य वंश की कन्या होगी···

? : इस बाल कन्या का चुनाव कैसे होता है ?

धू : हर घर की पूछ-गछ के बाद कुछ ऐसी बच्चियां चुन ली जाती हैं जो अति सुन्दर हों, जिनके नख-शिख और आंखें बहुत सुन्दर हों। फिर ज्योतिष विद्या के पंडित उनकी जन्म-पत्रियां बांचते हैं और सबसे शुभ ग्रहों वाली बालिका को चुन लेते हैं। उसके बाद और अनेक प्रकार से उस बच्ची की परीक्षा लेते हैं, उसके मन की शक्ति को परखने के लिए, यहां तक कि उसे अंधेरी कोठरी में रख कर भी परख की जाती है कि अंधेरे में डरती है या नहीं। फिर बलि दिये हुए पशुओं के कटे हुए सिर एक कोठरी में रखकर उस बच्ची को सारी रात उस कोठरी में बिताने के लिए कहा जाता है। वह बच्ची अगर फिर भी किसी भयानक दृश्य से नहीं डरती, तब उसे देवी के आसन पर बिठा दिया जाता है।···राजा भी उस कुमारी को पूजता है और लोग भी। यह पूजा हर वर्ष अनन्त चतुर्दशी के दिन होती है।

? : कुमारी तो खैर खुद देवी मानी जाती है, लेकिन सुना हुआ है कि नेपाल की हर लड़की पहले किसी देवता से व्याही जाती है, बाद में किसी मर्द से···

धू : हां, पांच-सात या नौ साल की बच्ची का पहला विवाह बेल फल के साथ होता है, जो शिव का प्रतीक माना जाता है। कन्या-दान की रस्म भी सिर्फ उसी विवाह के समय होती है, बाद में नहीं। मिथहासिक कथा चली आती है कि एक बार शिव पार्वती दुनिया का हाल-चाल देख रहे थे कि पार्वती ने सफेद धोतियों में लिपटी हुई कुछ औरतें देखीं जो रो रही थीं। कारण पूछा तो पता चला कि वह धरती की विधवा औरतें हैं। पार्वती का मन बहुत उदास हो गया। उसने शिवजी से वर मांगा कि धरती की कोई औरत कभी विधवा न हो। लेकिन नश्वर शरीर वाले मनुष्य के संसार में यह संभव नहीं हो सकता था। इसलिए शिव जी ने एक रास्ता निकाला कि दुनिया में केवल वह ही अजर अमर हैं। इसलिए अगर हरेक लड़की का विवाह उनसे हो जाए तो वह विधवा नहीं हो सकती···

? : शिवजी के रोमांसवाद का जवाब नहीं···लेकिन इस प्रथा ने मनोवैज्ञानिक तौर पर औरत के नज़रिये में जरूर फर्क डाला होगा।

धू : हां, एक पहलू से जरूर डाला है, वह विधवा होने और कहलवाने की दशा से मुक्त हो गई है, लेकिन आर्थिक स्थितियां बहुत निर्मम होती हैं, वह बहुत भयानक गर्तों की ओर ले जाता है···विवाह के समय लड़की को उसके पति की ओर से दा

सुपारियां दी जाती है। कई बार यह देखने में आया है कि पति अगर इतन बीमार हो जाए कि उसके बचने की आशा न रहे, तो उसकी पत्नी के माता-पिता जबर्दस्ती दस सुपारियां उस बीमार के तकिये के नीचे रखकर, अपनी लड़की वापस ले जाते हैं। इसका अर्थ होता है कि लड़की ने तलाक ले लिया है। यह लड़की को विधवा होने की दशा से बचाने के लिए किया जाता है। लेकिन इसका दूसरा रुख बहुत ही अमानुषिक होता है। जिस समय बीमार आदमी को अपनी पत्नी की सबसे अधिक आवश्यकता होती है, उसी समय उसकी पत्नी को उससे जुदा कर दिया जाता है। वह लड़की स्वयं भी यह नहीं चाह रही होती, लेकिन सामाजिक विचारधारा के आगे वह बिलकुल विवश हो जाती है···और आर्थिक मजबूरियों की दशा में जब भाइयों को पढ़ाने के लिए कोई लड़कियां शराब बेचकर या और अनुचित श्रम से पैसा कमाती हैं, तो वह बाद में समाज को स्वीकार नहीं होतीं। वह ग्रहण लगी समझी जाती हैं। मेरा गनकी उपन्यास इन सारी सामाजिक विधियों-रीतियों पर एक व्यंग्य है। गनकी शब्द का अर्थ है चन्द्र ग्रहण या सूर्य ग्रहण के समय की दक्षिणा, जब लोग दुहाई देते हैं कि चांद-सूरज को राहु-केतु से छुड़ाना है। लेकिन मासूम लड़कियां वह चांद-सूरज हैं जिन्हें सामाजिक रिवाजों के राहु-केतु से बचाने के लिए कोई दुहाई नहीं करता···

? : धूसवां साहब ! आप एक ओर नेवारी के प्रसिद्ध कहानीकार और उपन्यासकार हैं, एक ओर काठमांडू के त्री चंद्रा कैम्पस में नेपाली इतिहास और संस्कृति के प्रोफेसर हैं और एक ओर कई-कई वर्षों के लिए डिप्लोमैटिक सर्विस के लिए चुन लिए जाते हैं। यह विरोधी रुचियां कभी एक दूसरे से टकराती नहीं ?

धू : बहुत टकराती हैं। कलम की भाषा और नौकरी की भाषा एक दूसरे को संगसार करने, एक दूसरे पर पथराव करने की स्थिति में आ जाती हैं और मैं दोनों के बीच खड़ा हुआ महसूस करता हूं कि मुझ में न लड़ने की शक्ति रह गई है, न पीछे हटने की। समझौतों में लेखक का धर्म टूटता है और राजनीति का धर्म केवल समझौतों में होता है···मैंने अपना नया उपन्यास "सितू" मन की इसी अवस्था में से लिखा है, जिसका अर्थ है—पवित्र घास। उस उपन्यास का मुख्य पात्र मैं स्वयं हूं। वह पात्र आदर-योग्य समाज के पर्दे के पीछे जो कुछ भयानक घटित हो रहा है, उससे घबराकर पहाड़ी निर्जनों की ओर दौड़ता है···लेकिन हर पहाड़ी दीवार के पीछे उसे वही शहर बसा हुआ दिखाई देता है, हर बादल की ओट में वही सभ्यता··· और जहां मजबूर कोखें बच्चों की उलटी करती हैं···इस उपन्यास में मुख्य पात्र की एक दूध-बहन है, जिसकी मां ने जन्मते ही मां की ओर से अनाथ हो गए मुख्य पात्र को अपने दूध पर पाला था, वह लड़की उसकी चेतनता का प्रतीक बन जाती है और उसे उस की जद्दो-जहद से भागने वाले रास्ते से लौटकर फिर जिद्दो-जहद वाले रास्ते पर डाल देती है···इस तरह उपन्यास के बीच का लेखक —मैं, अपना शाश्वत संबंध अपनी कलम से जोड़ता है···

साथ पासा खेल रहा था, उसके मन में एक वर्जित विचार आ गया। देवी की सुंदरता पर मोहित राजा उसकी काया की कामना करने लगा तो देवी ने रुष्ट होकर कहा कि अब वह कभी भी साक्षात् रूप में दर्शन नहीं देगी। राजा के प्रायश्चित करने पर दया कर उसने कहा कि अब से अगर हर काल का राजा एक बाल-कन्या की पूजा करेगा, तो वह उसी बाल-कन्या के रूप में राज्य पर कृपालु रहेगी। उसने ही यह आदेश दिया था कि पूजा के लिए जो भी कन्या चुनी जाएगी, वह केवल साक्य वंश की कन्या होगी···

? : इस बाल कन्या का चुनाव कैसे होता है ?

धू : हर घर की पूछ-गछ के बाद कुछ ऐसी बच्चियां चुन ली जाती हैं जो अति सुन्दर हों, जिनके नख-शिख और आंखें बहुत सुन्दर हों। फिर ज्योतिष विद्या के पंडित उनकी जन्म-पत्रियां बांचते हैं और सबसे शुभ ग्रहों वाली बालिका को चुन लेते हैं। उसके बाद और अनेक प्रकार से उस बच्ची की परीक्षा लेते हैं, उसके मन की शक्ति को परखने के लिए, यहां तक कि उसे अंधेरी कोठरी में रख कर भी परख की जाती है कि अंधेरे में डरती है या नहीं। फिर बलि दिये हुए पशुओं के कटे हुए सिर एक कोठरी में रखकर उस बच्ची को सारी रात उस कोठरी में बिताने के लिए कहा जाता है। वह बच्ची अगर फिर भी किसी भयानक दृश्य से नहीं डरती, तब उसे देवी के आसन पर बिठा दिया जाता है।···राजा भी उस कुमारी को पूजता है और लोग भी। यह पूजा हर वर्ष अनन्त चतुर्दशी के दिन होती है।

? : कुमारी तो खैर खुद देवी मानी जाती है, लेकिन सुना हुआ है कि नेपाल की हर लड़की पहले किसी देवता से ब्याही जाती है, बाद में किसी मर्द से···

धू : हां, पांच-सात या नौ साल की बच्ची का पहला विवाह बेल फल के साथ होता है, जो शिव का प्रतीक माना जाता है। कन्या-दान की रस्म भी सिर्फ उसी विवाह के समय होती है, बाद में नहीं। मिथहासिक कथा चली आती है कि एक बार शिव पार्वती दुनिया का हाल-चाल देख रहे थे कि पार्वती ने सफेद धोतियों में लिपटी हुई कुछ औरतें देखीं जो रो रही थीं। कारण पूछा तो पता चला कि वह धरती की विधवा औरतें हैं। पार्वती का मन बहुत उदास हो गया। उसने शिवजी से वर मांगा कि धरती की कोई औरत कभी विधवा न हो। लेकिन नश्वर शरीर वाले मनुष्य के संसार में यह संभव नहीं हो सकता था। इसलिए शिव जी ने एक रास्ता निकाला कि दुनिया में केवल वह ही अजर अमर हैं। इसलिए अगर हरेक लड़की का विवाह उनसे हो जाए तो वह विधवा नहीं हो सकती···

? : शिवजी के रोमांसवाद का जवाब नहीं···लेकिन इस प्रथा ने मनोवैज्ञानिक तौर पर औरत के नज़रिये में जरूर फर्क डाला होगा।

धू : हां, एक पहलू से जरूर डाला है, वह विधवा होने और कहलवाने की दशा से मुक्त हो गई है, लेकिन आर्थिक स्थितियां बहुत निर्मम होती हैं, वह बहुत भयानक राहों की ओर ले जाता है···विवाह के समय लड़की को उसके पति की ओर से दस

सुपारियां दी जाती है। कई बार यह देखने में आया है कि पति अगर इतन बीमार हो जाए कि उसके बचने की आशा न रहे, तो उसकी पत्नी के माता-पिता जबर्दस्ती दस सुपारियां उस बीमार के तकिये के नीचे रखकर, अपनी लड़की वापस ले जाते हैं। इसका अर्थ होता है कि लड़की ने तलाक ले लिया है। यह लड़की को विधवा होने की दशा से बचाने के लिए किया जाता है। लेकिन इसका दूसरा रुख बहुत ही अमानुषिक होता है। जिस समय बीमार आदमी को अपनी पत्नी की सबसे अधिक आवश्यकता होती है, उसी समय उसकी पत्नी को उससे जुदा कर दिया जाता है। वह लड़की स्वयं भी यह नहीं चाह रही होती, लेकिन सामाजिक विचारधारा के आगे वह बिलकुल विवश हो जाती है···और आर्थिक मजबूरियों की दशा में जब भाइयों को पढ़ाने के लिए कोई लड़कियां शराब बेचकर या और अनुचित श्रम से पैसा कमाती हैं, तो वह बाद में समाज को स्वीकार नहीं होतीं। वह ग्रहण लगी समझी जाती हैं। मेरा गनकी उपन्यास इन सारी सामाजिक विधियों-रीतियों पर एक व्यंग्य है। गनकी शब्द का अर्थ है चन्द्र ग्रहण या सूर्य ग्रहण के समय की दक्षिणा, जब लोग दुहाई देते हैं कि चांद-सूरज को राहु-केतु से छुड़ाना है। लेकिन मासूम लड़कियां वह चांद-सूरज हैं जिन्हें सामाजिक रिवाजों के राहु-केतु से बचाने के लिए कोई दुहाई नहीं करता···

? : धूसवां साहब ! आप एक ओर नेवारी के प्रसिद्ध कहानीकार और उपन्यासकार हैं, एक ओर काठमांडू के त्री चंद्रा कैम्पस में नेपाली इतिहास और संस्कृति के प्रोफेसर हैं और एक ओर कई-कई वर्षों के लिए डिप्लोमैटिक सर्विस के लिए चुन लिए जाते हैं। यह विरोधी रुचियां कभी एक दूसरे से टकराती नहीं ?

धू : बहुत टकराती हैं। कलम की भाषा और नौकरी की भाषा एक दूसरे को संगसार करने, एक दूसरे पर पथराव करने की स्थिति में आ जाती हैं और मैं दोनों के बीच खड़ा हुआ महसूस करता हूं कि मुझ में न लड़ने की शक्ति रह गई है, न पीछे हटने की। समझौतों में लेखक का धर्म टूटता है और राजनीति का धर्म केवल समझौतों में होता है···मैंने अपना नया उपन्यास "सितू" मन की इसी अवस्था में से लिखा है, जिसका अर्थ है—पवित्र घास। उस उपन्यास का मुख्य पात्र मैं स्वयं हूं। वह पात्र आदर-योग्य समाज के पर्दे के पीछे जो कुछ भयानक घटित हो रहा है, उससे घबराकर पहाड़ी निर्जनों की ओर दौड़ता है···लेकिन हर पहाड़ी दीवार के पीछे उसे वही शहर बसा हुआ दिखाई देता है, हर बादल की ओट में वही सभ्यता··· और जहां मजबूर कोखें बच्चों की उलटी करती हैं···इस उपन्यास में मुख्य पात्र की एक दूध-बहन है, जिसकी मां ने जन्मते ही मां की ओर से अनाथ हो गए मुख्य पात्र को अपने दूध पर पाला था, वह लड़की उसकी चेतनता का प्रतीक बन जाती है और उसे उस की जद्दो-जहद से भागने वाले रास्ते से लौटकर फिर जिद्दो-जहद वाले रास्ते पर डाल देती है···इस तरह उपन्यास के बीच का लेखक —मैं, अपना शाश्वत संबंध अपनी कलम से जोड़ता है···

? : धूसवां साहब ! यह मेरे सारे सवाल आपके और आपके पाठकों के बीच एक पुल बने हुए थे। लेकिन चाहती हूं—सातवां सवाल पुल-हीन नदी बन जाए, जिसे आप खुद पार करें और दूसरे किनारे पर खड़े हुए पाठकों से मिलें।

धू : अपनी पहचान के लिए यह शब्द धूसवां मेरा अपना ही चुना हुआ है। माता-पिता की ओर से दिया गया मेरा नाम गोविन्द बहादुर मानंद है। मैंने एम० ए० तक की पढ़ाई बनारस में काशी हिन्दू बिश्वविद्यालय में की थी। वह रामदरश मिश्र मेरे सहपाठी थे, जो अक्सर कहा करते थे कि नेपाली और हिन्दुस्तानी लोग एक ही हैं। मुझे अपनी धरती में से अपनी पहचान तलाश करनी थी, जो उसके साथ जुड़ कर ही खोजी जा सकती थी। इसलिए मैंने अपनी धरती का वह शब्द अपने नाम के लिए चुना जो गोविन्द शब्द जैसा दोनों भाषाओं का शब्द नहीं था। धूसवां मेरी धरती का एक फूल है जो जैसे-जैसे खिलता है, सुगंधमय हो जाता है।··· पहले मैं केवल हिन्दी बोलता था, या भोजपुरी, फिर इसीलिए अपनी नेवारी सीखी और उसमें लिखना शुरू किया···मन से इकरार किया था कि कभी विवाह नहीं करूंगा, लेकिन अपने साथ किया यह इकरार मैंने पूरा नहीं किया···हाल में ही, थोड़े से ही दिन हुए, एक कविता लिखी है, "अपने पौत्र की मुस्कान में मैं देख रहा हूं कि मुझे खोई हुई जिंदगी मिल गई है, लेकिन कौन जान सकता है कि इस मुस्कान को अपने सारे परिवार के चेहरे पर देखने के लिए मैंने अपने आपको कितना खोया है"···मेरी पत्नी बहुत रूपवती है। वह बौद्ध वंश की है। उसके बौद्ध पिता चाहते थे कि वह बौद्ध-भिक्षुणी बने, उसके लिए वह बौद्ध-गुंपा बनाना चाहते थे। और दूसरी ओर उसकी सुन्दरता का बे-इंतहा चर्चा था। इतना कि किसी ने मेरी मां से कहा "तुम्हारे बेटे के लिए सिर्फ वही लड़की होनी चाहिए, लेकिन वह तुम्हें हासिल नहीं हो सकेगी···" इससे मां ने प्रण कर लिया कि वही लड़की वह अपने बेटे के लिए हासिल करेंगी···

प्रकृति ने मां का प्रण पूरा करने के लिए एक और साजिश कर ली कि जब बिचौलियों के जरिये मैंने और वसुन्धरा ने एक दूसरे को देखा, दोनों ने अपने-अपने मन में जो कभी भी विवाह न करने के प्रण किये हुए थे, वह प्रण टूट गए···

मेरे पिता और बड़े भाई भी चाहते थे कि मैं अभी विवाह न करूं और पढ़ूं, और उधर वसुंधरा के भाई और पिता भी चाहते थे कि वह बौद्ध-भिक्षुणी बने, कभी विवाह न करे। वह झगड़ा चार बरस चलता रहा। लेकिन एक ओर वसुंधरा ने "गूंला" व्रत रख लिया, जो एक महीने का महात्मा बुद्ध का व्रत होता है, जिसके रखने से मन की इच्छा पूरी होती है। और दूसरी ओर उसका इश्क मेरी तपस्या बन गया। सो इस तरह मेरा और वसुंधरा का विवाह हो गया। लेकिन इस खुशनसीबी का दूसरा रुख यह है कि मैंने विवाह से वफा पा ली है, लेकिन कलम से वफा नहीं पाली···

औरतों का जो रिश्ता मर्द से होता है, जिंदगी की हकीकतें सही अर्थों में उसे

मर्द की कमाई से जोड़ देती हैं...।

मैं कलम की भाषा बोलते-बोलते नौकरी की भाषा बोलने लगता हूं क्योंकि मुझे पैसा चाहिए, मुझे बच्चों को पालना है, पढ़ाना है...

मैं अपनी उपराम रातों में बहुत कुछ ऐसा लिख जाता हूं जो लेखक के तौर पर मेरा हासिल, मेरी उपलब्धि हो सकती है, लेकिन मैं वह सब लिखा हुआ छपवा नहीं सकता, क्योंकि वह मेरी दुनियावी तरक्की को मनफी कर सकता है...।

यही दुनियावी फिक्र कहता है कि मैं जलती हुई आग में तेल न डालूं और मेरी बेबस-सी हो गई काया महसूस करती है कि मुझमें न तेल रहा है, न आग...

अब केवल छह वर्ष बाकी हैं, इस दुविधा की स्थिति में से गुजरने के। फिर उम्र का वह वक्त आ जाएगा, जब बड़ी नौकरियों और ओहदों की तमन्ना का सवाल ही पैदा नहीं होगा। तब शायद मैं एक मन होकर अपने अंदर की बुझी हुई आग को भी जला लूंगा और दोनों हाथों से उसमें तेल भी डाल सकूंगा...

उषा पुरी से सात सवाल

? : उषा जी ! ज़िंदगी के अट्ठारह बरस लगाकर आपने 'भारतीय मिथक कोष' तैयार किया है, यह सिर्फ़ आप के नहीं, हम सब के सुपनों की ताबीर है···।

उ : आप के लफ़्ज़ों से याद आया कि यह जब मैंने हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी को दिखाया था, उनकी मृत्यु से कुछ दिन पहले, तो उनकी आंखें भर आई थीं। कहने लगे—मैं सारी उम्र सोचता रहा कि हिंदुस्तान में यह काम होना चाहिए मैंने···खुद इसे करना चाहा था, लेकिन इसे आरंभ करने का साहस नहीं होता था···

? : छोटी-छोटी किताबें कई हैं, पर अपने इतिहास और मिथहास की जानकारी के लिए किसी एक जगह से जिन हवालों की ज़रूरत हो वह मिल सकें—नामुमकिन-सी बात हो जाती है···

उ : दूसरी बात यह—कि एक ही घटना, किसी काल में किसी और रूप में मिलती है, और किसी काल में किसी और रूप में। मैं ने कोशिश की है कि जो वार्ता अलग-अलग काल में रंग बदलती रही, उस का विवरण भी एक ही जगह पर मिल जाए ···वेदों से लेकर ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों, पुराणों और महाभारत काल तक कई कथाएं कई रंग बदलती रही हैं। मैंने उन के मूल स्रोत भी खोजने की चेष्टा की है। जैसे उत्तर भारत में कृष्ण और राधा की पूजा का मूल स्रोत मिला है कि अलवर प्रदेश में किसी समय कन्हा और राई की पूजा होती थी। वही कान्हा उत्तर भारत में कृष्ण बना और वही राई राधा बनी···

? : हमारे प्राचीन ग्रंथ प्रतीकात्मक ज़बान में लिखे हुए हैं। वक्त का दुःखांत यह है कि प्रतीक ही ज़ाहिरा हक़ीक़त बन गए हैं और उनकी तहों में पड़े हुए मूल तत्त्व खो गए हैं···

उ : यही दुःखांत था कि वक्त का चिन्तन गिरता चला गया···मसलन गणेश की आराधना तो की जाती है, लेकिन उसके गुण किसने समझे हैं ?—गणेश का सिर हाथी का सिर कल्पित किया गया, पर इसलिए कि हाथी की आंखें एक मील दूर तक देख सकती हैं। इस प्रतीक का अर्थ दूरदर्शिता है। सिर्फ़ हाथी की सूंड के पास यह गुण होता है कि वह बड़े से बड़े पेड़ के तने को भी उठा सकती है, और बारीक से बारीक सूई को भी। गणेश का पेट बहुत बड़ा बनाया जाता है, जिसका अर्थ हर

बात को पेट में रख लेना है, और बातों को मुंह से कहकर अफ़वाहें बनाने के दोष से बचाना है।

गणेश के चार हाथ दिखाए जाते हैं, जिनमें से एक हाथ में रस्सी, एक हाथ में हथियार, एक हाथ में लड्डू होता है, और एक हाथ आशीर्वाद में उठा हुआ। लड्डू अच्छाई को दी जाने वाली आशीष है, रस्सी, आत्म-मर्यादा का प्रतीक, आशीर्वाद में उठा हुआ हाथ मानव-शक्ति को मिली हुई दिव्य-शक्ति का प्रतीक और साथ ही एक हाथ में लिया हुआ हथियार शक्ति का प्रतीक है, जूझने का, जद्दो-जहद का।

इसी तरह गणेश की सवारी चूहे की बनाई जाती है, जिसका अर्थ स्पष्ट है कि उसकी पहुंच कहीं भी हो सकती है, बंद दरवाज़ों के अंदर भी, बंद खानों के अंदर भी···

? : आम इस्तेमाल की प्राचीन चीज़ों को, जिन्हें पिछड़े हुए समय की चीज़ें कह कर नकार दिया गया है, उन के बारे में आपकी खोज ने कोई रोशनी डाली है?

उ : मैंने खुद रोशनी पाई है, इसलिए कई बातों पर रोशनी डाल सकती हूं···मन को बड़ी तकलीफ़ होती है, जब हवन की सामग्री इकट्ठी करते समय, आग जलाने के लिए लकड़ियां लफ़्ज़ इस्तेमाल किया जाता है। आग और आग का भेद नहीं समझा जाता। जब आग किसी लाश की चिता के लिए जलाई जाती है, तब लकड़ियां लफ़्ज़ इस्तेमाल किया जाता है, पर जब हवन के लिए जलाई जाती है, तब समिधा लफ़्ज़ इस्तेमाल किया जाता है···क्या यह हवन की आग का अपमान नहीं है?

इसी तरह गुलाब का फूल कभी किसी देवता को अर्पित नहीं किया जाता। इस फूल के साथ कांटे होते हैं, इसलिए इसका इस्तेमाल राक्षसों को फूल अर्पण करने के समय होता था। देवताओं को केवल वही फूल चढ़ाए जाते हैं, जिनके साथ कांटा नहीं होता। आश्चर्य होता है, जब दोस्तों मित्रों को गुलाब के फूल दिये जाते हैं···

बहुत कुछ लोग भूल-बिसार चुके हैं। आप आज के किसी आदमी से पूछ कर देख लें कि शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा और कृष्ण पक्ष के चंद्रमा में क्या अन्तर होता है, किसी को नहीं मालूम। चांद-तारों को कोई देखता ही नहीं···हालांकि यह पहचान बड़ी प्रत्यक्ष होती है कि शुक्ल पक्ष का चंद्रमा अंग्रेज़ी के 'सी' अक्षर जैसा होता है—C, और कृष्ण पक्ष का 'डी' जैसा, उसकी पहली लकीर के बिना—Ɔ···

? : यानी ब्रैकेट शुरू होने वाला निशान, शुक्ल पक्ष के चंद्रमा का, और ब्रैकेट बंद होने वाला, कृष्ण पक्ष के चंद्रमा का। लगता है तिथियां ब्रैकेट बन जाती हैं, और जिनके बीच लिखी हुई इबारत पूर्णिमा होती है···

उ : आपके सवाल के जवाब में यह भी कहना चाहती हूं कि जड़ी बूटियों की पहचान और उनका इस्तेमाल, जो आम साधारण और रोज़ के इस्तेमाल में शामिल था,

उसे हमारी पीढ़ियां भूल गई हैं···।

मसलन, उबटन, शरीर की त्वचा के लिए कैसी मुफ़ीद चीज़ है, कोई नहीं पहचानता। आज वह हमारे इस्तेमाल में शामिल नहीं है। गर्मियों के दिनों में उसमें चंदन जैसी ठंडी चीज़ें मिलाई जाती थीं, और जाड़ों के दिनों में बेसन और केसर जैसी गर्म चीज़ें।

आंखों के काजल के लिए भी मौसम का तक़ाज़ा सामने होता था। साथ में आंखों की दृष्टि का ध्यान, कि काजल बनाने के लिए दिये में जो तेल जलाया जाए वह नीम की निबौलियों से बनाया हुआ तेल हो। या नीम को सुखाकर पीसकर, गाय के घी में मिलाकर उसका दिया जलाया जाए और दिये से झड़ी हुई कालख को चालीस दिन त्रिफला के जल से धोया जाए···

? : हार सिंगार से ख़याल आया है कि गहनों के इस्तेमाल का ज़रूर कोई बुनियादी कारण होगा, जिस्म की नसों से संबंधित, यह महज़ सजावट नहीं हो सकता···।

उ : हर गहने का संबंध जिस्म की नसों से होता है। विवाह का शगुन अंगूठी सारी दुनिया में प्रचलित है, भले ही आज इसका कारण कोई नहीं सोचता। पर इसका कारण, कन-उंगली के बराबर की उंगली यानी अनामिका का दिल से सीधा संबंध होना है, उस उंगली का एक अंगूठी में घिर जाना, दिल की ओर जाने वाली नसों में खून की गर्दिश के लिए सहायक है···

इस तरह गले की हंसली वही काम देती है जो आज स्पांडेलाइटिस की बीमारी होने पर डाक्टर का बांधा हुआ गले का कालर देता है। कंधों से जिन नसों का संबंध है, गले की हंसली उनके तनाव को कम करने में सहायक होती है···।

इसी तरह कमर की तगड़ी, और पैरों के बिछुए। बाएं पैर का बिजुआ दाहिनी बांह की नसों में खून की हरकत के लिए, और दाहिने पैर का बिछुआ बाईं बांह की नसों में खून की हरकत के लिए सहायक है। तगड़ी कमर की नसों को कसने के लिए···

नाक का छेद, आर कानों के छेद सिर के नसों से संबंधित हैं···

? : चीन का एक्यूपंक्चर सारे का सारा नसों की जानकारी से ताल्लुक़ रखता है। सुइयों से नसों को बेध कर, वह लोग खून की गर्दिश को तेज़ कर देते हैं। इसी आधार पर ज्योतिष शास्त्र के ज्ञाता, जिसकी जन्मपत्री में मंगल बद हो, उसे नाक छिदवा कर सोने या चांदी का छल्ला पहनने का उपाय बताते हैं···

ऊषा जी ! जिन प्राचीन ग्रंथों का आपने अध्ययन किया है, उनमें ही कहीं ज़िक्र आता है कि खेतों को उजाड़ने वाले सात कहर होते हैं—अति वर्षा, सूखा, चूहे, टिड्डी दल, ओले गिरना, बैरी का हमला और पौधों को तेला लग जाना। यह सातों कहर हमारी संस्कृति पर पड़े हैं। वह खेती तो उजड़ गई, लेकिन चाहूंगी, इन सात सवालों के ज़िक्र में, सातवां जवाब किसी उपाय जैसा दें !

उ : अगर मेरा बस चले तो अपने देश की पूरी शिक्षा की व्यवस्था को बदल दूं। आज

हमारे मुल्क के सभी क्षेत्रों म जो काइ क्षत्र सबसे गया-गुज़रा है, वह हमारा शिक्षा का क्षेत्र है।

मैंने आज के बहुत से जवान बच्चों को पूछकर देखा है कि वह तालीम की ओर से इतने लापरवाह हैं, आखिर वह बड़े होकर क्या बनना चाहेंगे ?—और सिर से पैरों तक मेरे जिस्म में, उनका एक ही जवाब सुनकर, एक कंपन उतर जाता है, कि वह बड़े होकर और कुछ नहीं बनना चाहते, सिर्फ़ पालिटिक्स में जाना चाहेंगे। कहते हैं—"इस क्षेत्र में न तालीम की ज़रूरत होती है, न सरमाया और करोड़ों का फ़ायदा हो जाता है···।"

इस भयानक सवाल का जवाब बनना मुझ अकेली के बस में नहीं है, लेकिन जवाब एक ही है कि देश की शिक्षा की व्यवस्था को बदलना चाहिए···

यह हमारे ही देश की प्रथा थी कि अधिकारी को ज्ञान दिया जाता था। ज्ञान को धारण करने वाला जो अधिकार, किसी की योग्यता के बल पर होता था, वह आज पैसे के बल पर हो गया है। स्कूलों और कालिजों के दाख़ले बिकते हैं। जो कोई भी मोल चुका सकता है, वह 'अधिकारी' है···जब मानसिक और रूहानी क़ाबलियत की जगह पैसे ने ले ली, तो सारा कर्म उलट गया···कर्म तो तभी उलट गया जब विद्या बेची जाने लगी···

आज का अध्यापक भी अपने ओहदे को ख़रीदता है और आज का विद्यार्थी भी अपने अधिकारी पद को ख़रीदता है···

और जो "इल्म" हासिल होता है, उसका संबंध न मानसिक अमीरी से है, न रूहानी अमीरी से···

हरिभजन सिंह से सात सवाल

? : हरिभजन जी ! आपकी ज़िंदगी का वह कौन-सा हादसा था, जब आपने पहली वार जाना कि आपके मन की मिट्टी में से चिन्तन का लावा निकलने वाला है ?

ह : मेरी मुकम्मिल ज़िंदगी कभी न खत्म होने वाला हादसा है, हादसा दर हादसा, अगर मैं हादसे का मतलब यह लूं जो अचानक किसी को झिंझोड़ के जाने-पहचाने रास्ते पर से परे फेंक देता है, झिंझोड़ता-खरोंचता है, और खतरनाक हद तक किसी खातमे के करीब लाकर खड़ा कर देता है। मैं जाने-पहचाने रास्तों से परे फेंका हुआ आदमी हूं, मेरी मिट्टी तो बनी ही लावे के फूटने से है।

मेरे हादसे में सिर्फ़ 'अचानक' वाला तत्त्व ग़ायब है, बाक़ी हर ब्योरा सदा हाज़िर रहा है। मुद्दत दराज़ की वात है। जब एक लम्बा भूकम्प आया था जो पिता-माता-वहन-दीदी सवको निगल गया और मुझे अपनी चिन्ता का टुकड़ा खाने के लिए पीछे छोड़ गया। बस यहां से ही मेरे चिन्तन और सृजन का आरंभ होता है। यह भूकंप का काल छह साल तक चलता रहता है। इसके बाद बनवास का दूसरा भूकंप शुरू होता है। और उसके वाद कोई और···

मैं तीखी लेकिन लगातार आग पर पका हुआ बोध हूं। पहले वहुत समय तक अचेत ही सृजन करता रहा, चिन्तन करता रहा। लेकिन, मैं वना ही सृजन-चिन्तन के लिए हूं, यह बोध जिस घड़ी जागा उसका वर्णन कर देता हूं।

हमारे गांव से कोई मील भर की दूरी पर उजाड़ में एक मज़ार था, जिसे शाह कमाल कहते थे। एक क़िले जैसी इमारत थी। मैं इसके अंदर तो कभी नहीं गया, लेकिन साल के साल इसके गिर्द लगने वाला मेला ज़रूर देखा है, इसके नाम से मशहूर एक रिवायत भी सुनी है। यह इमारत कभी सात-मंज़िली थी। शाह कमाल इसकी सातवीं मंज़िल पर चढ़कर अल्लाह से बातें किया करता और मस्ती में आकर नाचा करता था। पास ही वादशाह का महल था। उसे मस्त-मलंग शाह कमाल का नाच अच्छा नहीं लगा। उसने इलज़ाम लगाया : कमाल ! तुम सातवें चौबारे पर चढ़कर मेरी वेटियों-वहनों को झांकते हो। कमाल ने सुना और चौवारे की छत पर चढ़ गया, वादशाह को ललकारा, खुदा को पुकारा, और चौबारे को

एड़ी से ठोकर मारी। छह मंज़िलें धरती में धंस गईं। शाह कमाल के डेरे की एक ही मंज़िल बची रह गई।

इस डेरे के आस-पास वीरान खेत थे, रोड़ी के मैदान थे, खुद-रौ झाड़ियां थीं, गहरे गड्ढे थे और कोई आधे मील की दूरी पर एक उजाड़ बगीची थी, परे कुछ क़दमों की दूरी पर एक नहर थी। यह उजाड़ बगीची मेरी सैर-गाह थी। मैं घर से भागकर यहां पढ़ता, लिखता, सोचता और अपने आपसे अपने सुपने सांझे किया करता था। इस बगीची से चार क़दमों की दूरी पर कंटीली झाड़ियां उगी हुई थीं। जाड़े की ऋतु में इसमें लाल डोडियां लगती थीं, जिन्हें तोड़कर खाता था। उन्हीं झाड़ियों की अमियां मुझ फ़क़ीर की ज़याफ़त थीं। इन अमियों से ज़्यादा स्वाद फल मुझे आज तक कोई नहीं लगा। यही वह उजड़ी बगीची है जहां बैठकर मैंने अपनी कविता लिखी थी—'पतझड़ के पीले फूल'···,

यहां एक दिन एक सफ़ेद सांप से मुलाक़ात हुई थी। यह सांप खुदा की 'वही' की तरह पता नहीं कहां से नाज़िल हुआ। मेरी तरफ़ फन फैलाकर झूला। मैं दहल गया। एक चीख बनकर मैं उजाड़ में फैल गया। इस चीख में किसी गीत की लय-जैसी महराब थी, दूर तक फैलती हुई। वह सांप मेरे अंदर मेरी मौत की चेतना जगाकर चला गया। इससे पहले मैं कविता लिखते समय लफ़्ज़ों से टक्करें मारता था। इसके बाद मैं लफ़्ज़ों, विचारों, भावों से खेलने लगा। कोई चौदह साल का बच्चा था। मेरे अंदर एक मिथ जैसी जागी : मुझे मौत से मांग लिया है शायरी ने अपने लिए। वह मिथ सांप जैसी सुंदर, शाह कमाल जैसी सूफ़ियाना, उजाड़ जैसी सपाट, और जंगली झाड़ियों की अम्बियों जैसी खुद-रौ। उसकी महराबी लय मुझे आज भी दूर तक फैलती-पसरती प्रतीत होती है। बस यही मेरा उस समय का अनुभव है जो 'वही' की तरह नाज़िल हुआ। यह बड़ी जटिल-सी चेतना है, जो मैं आज पहली बार तुम्हारे साथ सांझी कर रहा हूं। मैं उजाड़ में फैली हुई आवाज़ हूं। खुदा अहंकार से बचाए। पर, झूठ भी नहीं बोला जाता, मेरे जैसा और कोई नहीं है। सिर्फ़ मेरे जैसा, मुझसे बड़ा-छोटा नहीं।

वह सफ़ेद सांप मेरी कविता में अनेक बार हाज़िर होता रहा है। मुझे मेरी मौत की याद कराता और ज़िंदगी को तीखी चाल चलने के लिए उकसाता रहा है। तुम्हें वह टुकड़ा सुनाऊंगा जो मैंने उसी दिन लिखा था :

नाग रे नाग, मेरे प्यारे विसियर
हौले से फन को झुका
उड़ते अंगारे-सी तेरी सुंदर जीभा
हौले से चिंगारी फैला

? : किसी उस घड़ी की बात बताइये जब किसी की मुहब्बत के लिए या किसी भी प्राप्ति के लिए आपने जाना हो कि आरज़ू क्या होती है ?

ह : आरज़ू तो मेरी गद्दी के नीचे दफ़न छह मंज़िला महल है और फिर भी मुझे उजाड़

में जीवित अपनी एकमात्र सातवीं मंज़िल का उलाहना है। लो मैं तुम्हें दफ़न कोठरी में जीवित एक याद की व्यथा सुनाता हूं।

एक लड़की थी करतारी। दसवीं पास करने के बाद मैं अपने मामा के पास जा टिका था। लाहौर मुग़लपुरा के साथ लगी हुई रामगढ़ नाम की बस्ती में। करतारी मेरे मामा की किराएदार थी। सांवला रंग, गठा हुआ बदन। उम्र में मुझसे दो एक बरस बड़ी। क़द मुझसे चार उंगल भर छोटा। बहुत मासूम। उसे पंजाबी के बैत बहुत याद थे। 'सदा न बागीं बुलबुल बोले, सदा न बाग बहारां' वाली बैत मैंने सबसे पहले उसी से सुना था। मैं भी छोटी-मोटी तुकें जोड़ लेता था। हम सहज में ही एक-दूसरे के वक्ता और श्रोता बन गए। तब मुझे पहली बार पता लगा कि घरों में शेर बोलना भले मानसों का काम नहीं है। हमारी शेरबाज़ी की कस्तूरी उड़नी शुरू हो गई और हम दो हुए-न-हुए गुमनाम-से इन्सान बदनाम होने लगे। 'चन्न जी आपणे दाग चुणो / कौन पछाणे सान्नूं चन्न जी साडे दाग ख़ुणो'। (दोस्त अपने दाग़ चुन लो। इन दाग़ों के बग़ैर हमें कौन पहचानेगा)

तारी ब्याही हुई थी, अपनी उम्र से लगभग दुगुनी उम्र के आदमी से। अड़ौस-पड़ौस में जो खुसर-फुसर हुई थी उसकी भनक उसके ख़ाविंद तक भी पहुंची। आदमी बुरा नहीं था, उसने प्यार से करतारी को ज़रा-सा झिड़क दिया। वह बिगड़ उठी। अगले दिन उसके सिर में दर्द था, मन से भी दुखी थी। उसने अपने घरवाले के पीने के लिए रखी हुई बोतल ख़ुद चढ़ा ली। नशा चढ़ा तो वह पागलों की तरह नाचने लगी। न उसका ख़ाविंद घर पर था, न मैं, न मेरा मामा। पड़ौसियों के नाम लेकर करतारी रोने और गाने लगी और बीच-बीच में उसने प्यार से मेरा नाम भी लिया। 'एउं तुरियां ख़ुशबोइयां वे जीकण तेरियां मेरियां गल्लां'। तारी और उसके ख़ाविंद को हमारा घर छोड़ना पड़ा। पहले वह उसी बस्ती में किसी और जगह किराएदार बने, फिर रामगढ़ छोड़कर किसी और जगह चले गए।

तारी बहुत बेबाक लड़की थी। वह सात बहाने बनाकर भी हमें मिलने आ जाती थी। अपने मां-बाप से बिछड़ी बिचारी जान, उसे हमसे अपनत्व महसूस होता था। बातें करते-करते आंसू भर लाती। मेरे मामा-मामी को उसकी मासूमियत का यक़ीन था, पर वह भी लोक-लाज से डरे हुए थे। अब तो वह चाहने लगे थे कि मैं ही वहां से चला जाऊं। मैं बहुत परेशान हुआ। मुझे लगता था मुझमें से कुछ खो चुका है, किसी ने मुझे बुड़क मारकर ज़ख़्मी कर दिया है। लगता था, वह मेरी कुछ लगती है, पर उससे अपने रिश्ते का मैं अभी तक कोई नाम नहीं रख सका था। उसके संबंध में मेरी तीखी तीव्र चेतना तो तब जागी जब वह हमारा घर छोड़कर किसी और जगह चले गए।

कुछ समय बाद हम दुनिया की भीड़ में एक दूसरे से बिछड़ गए, खो गए लेकिन बहुत देर तक करतारी ने मेरे ज़ेहन को घेरे रखा। उसे याद करके मुझे

अपना आप यूं महसूस होता था जैसे किसी उजड़ गए मेले की ख़ामोशी में गुमसुम सुलगता हुआ एक बांसरी की बोल हो। वही तारी मुझे लगता है 1947 या 48 में मुझे फिर मिली थी।

जगह कनाट प्लेस, प्लाज़ा। समय मैटिनी। बहुत भीड़ थी। वह एक कोने में अकेली खड़ी थी। वही रंग, वही क़द-बुत, वही जाज़बीयत, मैं खिले फूल की तरह तेज चाल से उसकी ओर बढ़ा। और वह सिकुड़ गई, जैसे मैं कोई अजनबी हूं। क्या वह कोई और लड़की थी और उसे पहचानने में मुझे भ्रम हुआ था? मैं अति-भावुकता की तपिश से तप रहा था। उसने नज़रें नीची कर लीं। मैंने पत्थर की मूर्ति की तरह वह बरसों जितना लम्बा क्षण बिना हिले-डुले भोगा। मुझे आज तक यकीन नहीं होता वह कोई और थी। सब कुछ वैसा ही था, सिर्फ़ आंखों में आंसुओं की जगह हया थी, बेबाकी की जगह मजबूरी थी। मैं भी तो कुछ बदल गया था। पहली बार मैंने उससे अपने रिश्ते का नाम रखा था। तब मेरे अंदर आरज़ू चिल्ला उठी थी किसी घायल अकेले क्रौंच पंछी की तरह। कोई वाल्मीकि होता तो पूरी रामायण गा देता, मैं सिर्फ़ इतना-भर कह सका :

तेरे ही हुस्न की ख़ातिर हसीन मेरी निगाह
तेरे ही सांचे में ढला लगता है सारा जहां

? : कोई वह घटना, जिसने आपके खयालों में या नुक्ताए नज़र में कोई तीखा मोड़ ला दिया हो?

ह : नहीं, अमृता, मैं धमाकेबाज़ आदमी नहीं हूं, न मेरी ज़िंदगी में कोई अचानक धमाका हुआ है जिसने मेरे नुक्ताए नज़र को प्रभावित किया हो।

ज़रा मेरे नज़दीक होकर मेरी बात सुनो। मेरी ज़िंदगी में मुझसे बड़ा आदमी कोई और नहीं आया। यह बात मैं अभिमान-वश नहीं कहता, दुखी होकर कहता हूं। कोई होता जिसके पैरों पर मैं माथा टेक सकता और कहता 'इन्हीं की कृपा के सजे हम हैं।' नहीं, यह सौभाग्य मेरा नहीं। अपने उस्तादों में से पैर मैं डाक्टर नगेन्द्र को छू सकता हूं, छूए भी हैं। लेकिन उस ओर से भी सीखा कुछ नहीं।

चढ़ती जवानी में मुझे सबसे ज़्यादा प्रभावित जार्ज बर्नार्ड शा ने किया था। पर वह तो किताब थी, मनुष्य नहीं, माथे में जोत थी, घटना नहीं। उसने मेरे अंदर तीखा एहसास जगाया था कभी, पर आज मैं उसे भी भूल चुका हूं।

यह मेरे अकेलेपन का सबसे दुखदायी पहलू है। अपनी बोली के शिरोमणि-सिरमौरों की ओर से मायूस हो मैं अगली पीढ़ी के छोटे-छोटे किरदारों से महानता के बीज खोजता रहा हूं। जिस दिन मैं किसी धीर की 'यादगार' जैसी रचना, किसी अवतार की 'मेरे परत आवण तक' जैसी कृति पढ़ता हूं, तो उनकी विलक्षण स्वच्छता या तीव्रता को महसूस करता हूं, पर मेरे नुक्ताए-नज़र में तीखा मोड़ ले आने वाली पंजाबी रचना अभी मेरे सम्पर्क में नहीं आई।

मेरी पशेमानी का एक पहलू यह है कि मैं अपनी साधारणता से वाक़िफ़ हूं, पर अपने इर्द-गिर्द छोटे-छोटे लोगों की भीड़ देखकर अपने आपको साधारण से कुछ हटा हुआ समझने लगता हूं। मुझे बहुत वक़्त अपने आपको नीचा करने में लग जाता है और इसके प्रत्यक्ष प्रमाण मेरी साहित्यकारी में भी मिलते हैं।

इन्सान चाहे कितना ही आलिम फ़ाज़िल क्यों न हो, उसके समझने-सोचने में कोई मोड़ न आए तो रचना में ठहराव या एकसारता आ जाती है। इसीलिए मैं स्वयं ही नये प्रयोग करता रहता हूं। कहने को जी तो नहीं करता, पर सच यह है कि मैं आप ही अपने आपसे घटित होता हूं। हर रोज़ अपने कंधे पर सवार होकर अपने से आगे छाल मारने को जी करता है। अपने आपको तोड़-फोड़कर कुछ नया बनाने की लालसा लगी रहती है।

? : कोई वह चेहरा जो कभी आपके काग़ज़ पर नहीं उतरा? या कभी ऐसे महसूस किया हो कि कोई चेहरा है जो एक ऐटम की तरह फटकर सैंकड़ों अक्षरों में समा गया है?

ह : एक ही चेहरा जो ऐटम की तरह फटकर सैंकड़ों हज़ारों अक्षरों में समा जाने वाली एक ही हस्ती मां की है। यह बात मैं इतनी बार कह चुका हूं कि इसे दोहराए जाना मुझे अपनी मां की अज़मत के अनुरूप नहीं लगता।

सचेत या अचेत वह मेरी अनेकों रचनाओं में प्रगट हुई है।

एक बड़ी कृति मैं उसी के प्रति समर्पित कर रहा हूं। शायद उसके बाद मैं अपनी साहित्य-लीला समेट लूंगा।

अमृता, कुछ नज़्में बिलकुल निजी हैं जो अपनी खामोशी में मैंने सिर्फ़ अपनी मां को सुनाई हैं, उनमें से बहुत-सी मेरे साथ ही ख़त्म हो जाएंगी। आज उनमें से एक तुम्हारे साथ सांझी कर देता हूं। तुम्हारा जी चाहे तो इसे कविता न मानना। मां के आगे मुझे कौन-सा अपनी कला का प्रदर्शन करना है। यह एक लोरी है जो मैंने मां की ओर से अपने आप को लिखी है:

मां तुझ पे वारी, रे मां तेरे सदक़े
मां तेरे जोगी, रे मां तुधवन्ती
जब-जब तेरे को भूख सताए
रोटी का टुकड़ा मांगा न जाए
चुपचाप इक चीख चिल्लाए
तब-तब हाज़िर मां तुधवन्ती
मां तेरे जोगी, रे मां तुधवन्ती

? : तख़लीक़ी बेचैनी के पल लफ़्ज़ों की पकड़ में नहीं आते, फिर भी पूछना चाहूंगी कि आपने उन पलों को कैसे-कैसे भोगा है?

ह : तख़लीक़ के क्षण बेक़रारी के भी हैं शर्मसारी के भी:

जब मैं गल्पलोक का सृजन कर रहा होता हूं, तब मैं भी गल्प का पात्र बन

जाना चाहता हूं, वास्तविक तौर पर मर जाना चाहता हूं, क्यों ? मैं पैदल चलते हुए हाथ मारता हूं, होंठों में बुड़-बुड़ करता हूं। तेज़ रफ़्तार में, अपनी लिखत की लय के मुताबिक़, चलते-चलते एकाएकी ठहर जाता हूं। एक बार ट्रैम के नीचे आते-आते बचा। मोटर साइकिल पर बैठे हुए हाथ ऐसे हिला रहा था जैसे मोड़ काटने लगा हूं। ऐक्सीडेंट होते-होते बचा। आस-पास के लोग हंसते हैं मुझे पागल समझ कर। मैं शर्मसार होता हूं, माफ़ी मांगता हूं।

तखलीक़ के क्षण दुश्मनी पैदा करने के क्षण हैं :

मेरा एक सहयोगी था। नाम उसका भी भजन सिंह। हम कालिज से चले मेरे घर की तरफ़। मैं रास्ते में चुप हो गया, अपने आपमें डुबकी मार गया। वह बड़ा सच्चा था और बड़बोला भी। आधे रास्ते वह नान-स्टाप बोलता रहा। जब उसे पता लगा कि मैं तो कहीं खो गया हूं तो वह मुझे गालियां देता हुआ वापस लौट गया। उसका घर दूसरी तरफ़ था। उस दिन से वह मेरा दुश्मन है, उसने मुझे कभी माफ़ नहीं किया। जितनी देर कालिज में रहा, मेरी पीठ-पीछे निन्दा का दरबार लगाता रहा···

तखलीक़ के क्षण गहरी पवित्रता के क्षण हैं :

मुझे गुरु गोविन्द सिंह से संबंधित अपनी कविता 'तेरे हुज़ूर मेरी हाज़री की दास्तान' बहुत पसंद है। लम्बी नज़्म है। रेडियो पर पढ़नी थी। कालिज से घर आने तक मैंने रास्ते में कुछ सतरें घसीटीं, फिर घर पर खाना खाते हुए, रिक्शा में रेडियो स्टेशन जाते हुए, दाखला-पास बनवाते हुए, पंजाबी प्रोग्राम के कमरे में कवियों का इंतज़ार करते हुए, स्टूडियो में आवाज़ का टैस्ट देते हुए मैं कविता लिख रहा था। जब दूसरे शायर कविता बोल रहे थे, मैं तब भी कुछ घसीट रहा था। कविता बोलते समय भी मैंने कुछ पंक्तियां और जोड़ी थीं, बहुत परेशान, तीखी जल्दी, आस-पास के प्रति लापरवाह। यह क्षण ''अति ही रण मै तब जूझ मरौं'' वाले क्षण थे। लगा मैं गर्म उबलते हुए सरोवर में स्नान करके 'तेरे हुज़ूर' गया हूं। बाद में बहुत शान्त था।

तखलीक़ के क्षण कामुक बेचैनी और कामुक चैन के क्षण हैं :

नींद नहीं आ रही है, करवटें ले रहा हूं, ऐसा लगता है जैसे अपने बराबर में सोई हुई घरवाली को काम के लिए इशारा कर रहा हूं। न काग़ज़, न पैन्सिल, पर शाम के झुटपुटे में कभी आरंभ किया, कभी बीच में छोड़ा हुआ गीत माथे में लिख रहा हूं : 'कदी-कदी मन परदेसी होए।' पूस माघ की रात में जिस्म में से चिन-गारियां फूटने का एहसास होता है। जब मेरे मन की पंक्ति सूझी (पैरां हेठ धरती वी हौली-हौली सरके। धरती तों परां बंदा किथे जा खलोए) तब मैं रज़ाई के बाहर ठंडा निश्चल पड़ा था। जैसे मैं काम करके हटा हूं। नींद घटा बनकर आ रही थी। अब तो जी नहीं कर रहा था कि कोई अगला शेर माथे पर दस्तक दे।

अमृता, तखलीक़ तो मैंने फांसी के रस्से से झूलते हुए भी की है। 'मेरे

जंगेज में दीवा' के समय मुझे इस तरह का अनुभव हुआ था।

इन सारे अनुभवों में एक तत्त्व सांझा है और वह है किसी दर्शक का चोरी से झांकना। लगता है जैसे कोई सुन्दर सच अपने आपको बेपर्द कर रहा है और कोई पाठक-श्रोता की-होल में से झांक रहा है। सो लिखने का कार्य एक ही समय में कुछ प्रगटाने और कुछ-छिपाने के काम में लगा हुआ लगता है।

? : हरिभजन ! कभी आपको किसी अलौकिक सुपने या 'विज़न' का अनुभव हुआ है, जिसकी तशरीह कर सकना किसी तर्क की पकड़ में न आया हो ?

ह : अमृता, सुपने मैं आमतौर पर भूल जाता हूं, वह सुपने जिनकी तशरीह नहीं हो सकती, वह तो इन्सान निश्चय ही भूल जाता है, याद वही बात रहती है जो संचारण योग्य या संभालने योग्य हो। तशरीह किसी रचना को संभालकर रखने की ही चैनल है।

मैंने सुपने में बहुत सारी रचनाएं लिखी हैं, मुकम्मिल। जो भूल जाता हूं। कभी-कभी कोई एक-आध टुकड़ा याद रह जाता है। आजकल ही 'चल बुल्लिया तैनूं पिंडों बारह छड्ड आवां' सुपने में रच रहा था। कोई चार पंक्तियां याद रहीं, बाक़ी उड़-मिट गईं।

एक सुपना सुना रहा हूं : घने जंगल जैसे बाग़ में से एक लड़की गुज़रना चाहती है। उसे किसी चीज़ की तलाश है। उस लड़की ने कुरता पहन रखा है घुटनों तक लम्बा। बाक़ी कोई कपड़ा नहीं है। बाल अन-वहाए हैं। आखें बड़ी-बड़ी। वह उस जंगल जैसे बाग़ के किनारे खड़ी है। जंगल के गिर्द कांटों की बाड़ है। दूर पत्तों में छिपी हुई एक कोयल बोल रही है जो उसे जंगल में जाने के लिए मना कर रही है। लड़की इस बोली को समझती है। जिस पेड़ के पत्तों में छिपी हुई कोयल बोल रही है, उसके नीचे एक सांपन है जो पूंछ तक एक डंडे की तरह खड़े होकर कोयल तक पहुंचना चाहती है, और उसके गीत को डस लेना चाहती है। लड़की शायद इसी गीत तक पहुंचना चाहती है। यह सिर्फ़ सुपना नहीं था, सुपने में लिखी कविता थी। कविता भूल गया, सुपने का विवरण याद है। यह सुपना मैंने डलहौज़ी में देखा था। अकेला था, वहां रिसर्च के नोट लेकर गया था। एक चैप्टर तैयार कर रहा था। मैं इस सुपने की तशरीह कर रहा था। कोई मुझे कविता लिखने से मना नहीं रहा था और कविता लिखवा भी रहा था। उन दिनों मेरा काव्य-कार्य कमाल पर था। खोज के पन्ने लिखते-लिखते भी कविता लिखने बैठ जाता था। खोज-कार्य के रास्ते में रुकावट पड़ रही थी। कोई डेढ़ साल इसी दुविधा में नष्ट हो गया था। इसीलिए अपने निगरान और अपने मुखिया से बहुत झाड़ पड़ रही थी। मैं बड़े मानसिक क्लेश में था। यह सुपना तो क़ाबिले-तशरीह है। नाक़ाबिले-तशरीह सुपना कोई याद नहीं।

तुमने सुपने के साथ 'विज़न शब्द भी जोड़ा है। शायद तुम्हारा भाव भविष्य को वर्तमान में देख सकने और दिखा सकने वाली सुपनेसाज़ी से है। मैं

देख रहा हूं शिवजी के शीश से भूमि पर गिर रहा नाग जो प्यार और ललकार या शृंगार और रुद्र का संयुक्त रूप बनकर फन फैलाएगा और मनुष्य को अपने किरदार और गुफ़्तार दोनों में काव्य-सृजन की प्रेरणा देगा। मैं तो निरे ज़हर से डंक मारने वाली कविता का भी विरोधी हूं। इसीलिए सिर्फ़ शिकायती या निरा रोष-क्रोध-भय प्रगटाने वाली कविता के प्रति भी रुचिवान नहीं हुआ। मेरा 'विज़न' शिव के शीश से गिरा 'सफ़ेद' सांप है जो मन की कालिख को डंक भी मार सकता है, रंग भी सकता है। मैं ऐसे भविष्य का सुपना देखता हूं जहां शिव-सुन्दर डसता-रंगता है। ज्वालामुखी की चोटी पर एक सुन्दर-सा घर मेरा सुपना है।

? : हमारे प्राचीन चिन्तन ने सात लोक माने हैं। यह हमारी धरती भू-लोक, चंद्रमा का मंडल भुव लोक, सूर्यमंडल स्व लोक और उसके ऊपर मह लोक, जन लोक, तप लोक, और सत्य लोक। सातवें लोक को सच से जोड़ा गया है और सच अपना अपना होता है। सो अपने सच वाला सवाल आपको खुद करना है···इस सातवें सवाल की और सातवें जवाब की मैं सिर्फ़ कातिब हूं।

ह : अमृता! मैंने अपने शाह कमाल के सात-मंज़िले महल की उन छह मंज़िलों का ज़िक्र कर दिया है जो उसकी एड़ी की ठोकर से दफ़न हैं। मैं ज़िंदा-दर-गोरों को पलभर के लिए रोशनी में ले आया हूं। मैं फिर से सोच लूं: मेरी पहली मंज़िल में मेरा सफ़ेद सांप रहता है जो चांदनी में नहाई गहरे पानी की लहर जैसा सांवला है, जो प्यार जैसा डसता है और प्यार की प्यास जैसा खुमार चढ़ाता है। दूसरी मंज़िल में मेरी करतारी रहती है जो झरने की तरह उछाह से मिलती है पर प्यासा रखती है। चौथी मंज़िल में मेरी मां खामोश सोई पड़ी है, जिसकी आहट लेते मेरी उम्र बीत रही है। पांचवीं मंज़िल में मेरी शर्मसारी, बेक़कारी, पवित्रता, कामुकता रहती है और वह फांसी का रस्सा भी जिससे झूलते हुए मैं अपने शेर उच्चारता हूं। छठी मंज़िल में कुछ सुपने हैं और शिवजी के शीश से गिरा हुआ नागराज है। तीसरी मंज़िल का ज़िक्र मैं बार-बार भूल जाता हूं क्योंकि यहां अभी कोई नहीं रहता। यह मंज़िल उनके लिए आरक्षित है जो अभी नहीं आए हैं, पर जब आएंगे तो मैं उनके आगे माथा टेककर कहूंगा, आपकी ही कृपा से मैं कुछ हो सका हूं।

मेरे पास सिर्फ़ एक सातवीं मंज़िल ही तो बची है जिसकी छत पर चढ़कर मैं नाचा करता हूं। मेरा नाच ही मेरा सच है। क़सम 'सच्चे पातशाह' की मैं किसी भी बेटी-बहन को झांकने के लिए नहीं नाचता। मेरी कला मेरी ज़ात के पार है, व्यक्तिगत राग-द्वेष के लिए इसमें कोई जगह नहीं है। मेरे नाच का सिर्फ़ मेरे लिए कोई प्रयोजन नहीं है। यह मेरी मधुमती भूमिका है।

अमृता जी, मुझे नाचने दीजिये। इस कला-कार्य से बढ़कर मेरा कोई सच नहीं है। इसी में मेरे अहं की सार्थकता है।

के. एल. गर्ग से सात सवाल :
अनुभव बनाम चिन्तन की कथा

? गर्ग जी, मैं आपको एक चिंतनशील कहानीकार मानती हूं। जानना चाहूंगी कि यह चिंतन आपने कितना विरसे में पाया है और कितना अपने चंतन जतन से ?

ग : अमृता जी ! यथार्थ का अनुभव सूक्ष्म बोध को पुष्ट करता है और फिर यही सब कुछ मिल कर लेखक की साइकी का अभिन्न अंग बन जाता है। साइकी में ऐसी आंख फ़िक्स हो जाती है जो चिंतन के लिए कैमरा बनती है। उस आंख से गुज़र कर साधारण घटनाएं भी चिंतन की सतह पर असाधारण रूप धारण कर लेती हैं और विशिष्ट कलात्मक साहित्य की नींव पड़ जाती है।

लेखक की साइकी की रूप-रेखा बनाने में बिरसे और पसीने का विशेष योगदान है। लेकिन पंजाबी साहित्य में अभी भी हमारी परख जाति के इर्द-गिर्द घूमती प्रतीत होती है। फलाना बनिया लेखक है, अमुक तरखान और कोई और जाट और कहीं-कहीं जुलाहा ! और जाति के अनुसार ही हम लेखक की रचना के मूल-मुद्दे तक पहुंचने का ज़रिया तलाश करते हैं। जैसे बनिया लेखक आम बनिये की तरह कंजूस और डरपोक होगा—जाट हेकड़ीबाज़, बहादुर और ज़िद्दी होगा। और मेरे ख़याल में यही हमारे पंजाबी साहित्य की सबसे बड़ी त्रासदी बनी हुई है। हम लेखक को उसकी जाति के खानों में से बाहर आने की इजाज़त ही नहीं देते।

बिरसे में मुझे काफ़ी कुछ मिला है, पर मेरी रचना प्रक्रिया में ज़्यादा योगदान मेरे पसीने का है, मेरी मेहनत का है ! मेरे पिता एक साधारण दुकानदार थे ! साधारण छोटे दुकानदारों जैसी सोच वाले इन्सान ! दुकानदारी क़िस्म की छोटी-छोटी हेरा-फेरियों और लालची प्रवृत्तियों के मालिक ! असली शुद्ध बनिये। मेरी मां जज़्बाती तौर पर मेरे पिता से भिन्न किस्म की थीं—नाक पर मक्खी न बैठने देने वाली तेज़ तर्रार औरत ! जब पिताजी की दुकानदारी फ़ेल हो गई तो उन्होंने बहुत पापड़ बेले। लेकिन वह सदा ज़िदगी में फ़ेल ही रहे। लेकिन बार-बार फ़ेल होने और हारने के बावजूद वह कभी निराश नहीं हुए। ज़िदगी के सुनहरी पक्ष को देखने के इच्छुक वह सदा डटे रहे। कभी-कभी हम थक कर कहते "बापू,

आपने हमारे लिए क्या किया ?" तो वह अपने फ़क़ीरी अंदाज में कह देते "बेटे, मैं खाली भी तो नहीं बैठा रहा।" सो पिता जी की लगन, उनकी मेहनत मुझे विरसे में मिली। मां से जज़बात की अमीरी और ईगोइस्टिक ऐटीच्यूड प्राप्त हुआ। लेखक के तौर पर मैं कभी मेहनत से नहीं घबराता—आठ-आठ दस-दस घंटे भी काम कर लेता हूं और कभी किसी पाठे खां जैसे आदमी की हेकड़ी मुझे मंज़ूर नहीं होती !

मेरी रचना प्रक्रिया में मेरे हाथ के छालों और पसीने का भी बहुत हिस्सा शामिल है। पिता जी का बिज़नेस फ़ेल होने की सूरत में हम सब बच्चे ही लावारिसों जैसे हो गए। मां-बाप का लाड-प्यार और बेफ़िक्री हमारी ज़िंदगी से मनफ़ी हो गई। दिन-रात रोटी की चिन्ता खाती थी। फिर हमने अमृता जी, ज़िंदगी को क़ायम रखने के लिए क्या कुछ नहीं किया। लिफ़ाफ़े बनाए, रिक्शा पर दिन-रात बर्फ़ ढोई, ट्यूशनें कीं, क्लर्की की, कई तरह के पापड़ बेले—यह सब कुछ अब मेरी साइकी में शामिल हो गया है। हां सच, भाषा का करामाती रूप मुझे अपनी मां से मिला। महाभारत, रामायण, वेद, उपनिषद, गीता, गुरुग्रंथ साहिब की बानी भी मैं समझता हूं हर पंजाबी की तरह मेरा विरसा ही है जो मेरी रचनाओं की शक्ति को और बल बख़्शता है, इसका भव्य रूप उघाड़ता है।

? : ज़ेहनी तजुर्बों में कभी दुनिया के कुछ लेखकों का भी हिस्सा रहा है या नहीं ?

ग : क्यों नहीं, हिस्सा ज़रूर रहा है। क्लासिकल या बड़े लेखक साहित्य में ऐसे पद-चिह्न छोड़ जाते हैं जो नये लेखकों को अपनी कलात्मक प्रतिभा पहचानने के लिए बहुत ही मदद करते हैं। जो कई बार नये लेखकों के लिए प्रेरणा का स्रोत भी बनते हैं। अपनी बाल-अवस्था में पढ़ा हुआ आपका नाविल 'पिंजर' मुझे कई तीक्ष्ण और कड़वे अहसासों में से गुज़ार सकने में मददगार हुआ था। जार्ज ओरवैल और मार्क ट्वेन मेरी व्यंग्य-धारा को दिशा दे गए हैं। काम्यू, सार्त्र, चेख़व, आइन-रैंड, गुंचारोव, दोस्तोवस्की, गोर्की आज मेरे चिंतन का हिस्सा बन गए हैं। इन हस्तियों को पढ़कर ऊंचा और श्रेष्ठ साहित्य रचने की तीव्र इच्छा प्रगट होती है और अपनी ही रचना के लिए मापदंड बनाने में काफ़ी मदद मिलती है।

? : 'तलब का रिश्ता' वैसे तो आपके कहानी संग्रह का नाम है, पर मैं इसे आपके अंदर के लेखक की शाश्वत तलब से जोड़ कर जानना चाहूंगी कि ज़ेहनी तलाश में और कागज़ पर उतरने वाली कलमी तलब में जो फ़ासला होता है उसे तय करने में आपके सामने क्या कुछ हायल होता है और आप उसमें से कैसे गुज़रते हैं ?

ग : पहले आपको मैं इस कहानी के बारे में थोड़ा बताना चाहूंगा। मेरे चिंतन में यह बात घर कर गई थी कि मर्द-प्रधान समाज में औरत को कभी बराबर का हक नहीं मिलेगा, इस बात को प्रगट करने के लिए ही मैंने कहानी 'तलब का रिश्ता' लिखी थी। इसमें कुछ भड़ये एक औरत को ले आते हैं। चूल्हे अलग-अलग हैं, पर संभोग का साधन एक है। एक दिन औरत विद्रोह करती है और कहती है "ऐसे तो तलब

लगने पर आंख की कीचड़ तक चाटने लग जावें औरत की, ऊपर से उसे कुतिया, पैर की जूती बतामें, साले, हरामी, कुत्ते के जने !" औरत मर्द के लिए सदा वीर्य खारिज करने का ही साधन रही। प्रिन्सिपल संत सिंह सेखों ने एक बार एक भाषण में कहा था कि पंजाबी साहित्य का मर्द कई बरस औरत की चारपाई की पायत की ओर से आता था और उधर से ही वापस लौट जाता था।

आम आदमी की सैक्स-तलब की तरह लेखक में रचनात्मकता की तलब हर समय कायम रहती है। वह हर क्षण, हर पल, किसी विचार को अपने सूक्ष्म बोध का हिस्सा बनाने की इच्छा रखता है। कोई काम का विचार आ भी जाता है तो उसे काग़ज़ पर उतारने में कई बरस लग जाते हैं। भला क्यों? क्योंकि विचार को रचना बनाने के लिए काफ़ी लम्बा रास्ता तय करना पड़ता है। विचार को लेखक की सैन्सिबिलिटी का हिस्सा बनकर उसके व्यक्तित्व का अंग बनना होता है, और इसकी प्राप्ति के लिए लम्बे, अभ्यास की आवश्यकता है। दोस्तोवस्की इस का हल ऐसे बताता है कि लेखक को हर रोज़ लिखना चाहिए, चाहे यह कोई पत्र, रिव्यू या ऐसा ही कुछ और हो—इस तरह करने से रचना प्रक्रिया में पैदा होने वाली झिझक खत्म हो जाएगी। मेरे ख़याल में मास-मीडिया के पापुलर होने से फ़ीचर राइटिंग का स्कोप काफ़ी बढ़ गया है। अख़बार के लिए फ़ीचर लिख कर यह झिझक खत्म की जा सकती है। मैं 'ट्रिब्यून' में कई बरस से व्यंग्य लेख लिख रहा हूं। इनसे मुझे बहुत लाभ हुआ है। लाखों पाठक मिले और साथ ही विचार और उसे लिखित रूप में प्रकट करने के बीच का जो फ़ासला है, वह मुझे अब ज़्यादा लम्बा नहीं लगता। अच्छा विचार आते ही झट मेरे सूक्ष्म बोध की प्रक्रिया में शामिल हो जाता है और रचना साकार रूप धारण कर लेती है।

? : आपकी कहानी 'शहीद' एक ऐतिहासिक मसले को पकड़ में ले सकने वाली शक्ति-शाली कहानी है। इस शक्ति को इतने सादे लफ़्ज़ों में उतार सकने वाली घड़ी कैसी थी, इसके बारे में कुछ बताएंगे?

ग : अमृता जी! जब लेखक ज़िंदगी के कड़े यथार्थ को ही अपने चिंतन का आधार बना कर चलता है, तो उसकी रचना-प्रक्रिया सहज हो जाती है। पंजाब में कई बरस से आग-सी लगी हुई थी—मार-धाड़, क़त्लो-ग़ारत, लूट-खसोट का बाजार गर्म था। बहुत-सारे लोग मरे। एक फ़िरक़े के भी और दूसरे फ़िरक़े के भी। बहुत-सारे लोग, न चाहते हुए भी, मार दिए गए। क़त्ल होने के समय उनके मन में कुर्बानी, भाईचारे और अच्छी मानव क़द्रों-क़ीमतों की कोई शमा रोशन नहीं हो रही थी। वह शहीद नहीं शिकार थे जिन्हें बेरहमी से मारा जा रहा था। लेकिन एक या दूसरे फ़िरक़े का अख़बार उन्हें शहीद कह कर अपनी दुकानदारी चलाने की जल्दी में था। मैं उन्हें शहीद मानने से इनकारी था और अब भी हूं। बलवंत गार्गी ने भी एक इंटरव्यू में कहा था कि किसी को शहीद का दर्जा देने से पहले यह देखना पड़ेगा कि मरते समय उस आदमी के मन में कैसा जज़्बा काम कर रहा था। मैं बेमिकली

ऐसे टची मामलों में भी जज़बाती नहीं हूं। कठोर मन वाला हूं। सो, सहज रूप में मैंने इन सब घटनाओं की छानबीन की। विश्व स्तर पर इस मसले को सोचा और मुझे मार्क्सवादी दृष्टिकोण ही सच लगा। हमें छोटे-छोटे फ़िरकों या खानों में बंटने की बजाय विश्व स्तर पर इस समस्या को सोच का हिस्सा बनाना चाहिए। और मेरी कहानी 'शहीद' इस प्रक्रिया में पूरी उतरती महसूस होती है।

? : पंजाबी की आलोचना ने कभी आपका मोह-भंग किया है या नहीं ?

ग : पंजाबी आलोचना के कई गदाधारियों को कई बरस तक यह वहम रहा कि उनकी पहचान में से गुज़रा हुआ लेखक ही पंजाबी का स्थापित लेखक माना जाएगा। लेकिन कई अच्छे लेखक सीधे ही पाठकों से जा मिले और लोकप्रिय हो गए। गदाधारी चुप लगा गए। पर जब भी घटिया पुस्तकों पर अच्छे पारखियों की राय छपी देखता हूं तो मोह-भंग ज़रूर होता है। मित्र राशा की तीन पुस्तकें एक साथ छपीं। उनमें एक भी कविता काम की नहीं थी। पर पंजाबी आलोचना ने उन्हें प्रवासी चेतना का प्रमुख कवि क़रार दिया हुआ है। जब यह बात मैंने प्रकाशक से कही तो उसने हंसकर कहा "हमारा क्या गया—पैसे लेखक के, पुस्तकें भी लेखक की—" ऐसे सैंकड़ों उदाहरण हैं। प्रिन्सिपल संत सिंह सेखों ने जब एक नये कवि को पंजाबी के बड़े ग़ज़लगो शायरों के मुक़ाबले का ज़हीन कहा तो अदीबों के 'किन्तु' कहने पर हंसकर बोले "किसी के बारे में लिखने में अपना कुछ घिसता है क्या—आप लिखवा लीजिए···!" मेरी एक किताब के बारे में डाक्टर हरिभजन सिंह चाहते हुए भी नहीं लिख सके क्योंकि उससे किसी ख़ास रिसाले का संपादक नाराज़ होता था। आलोचना के विशेष मापदंडों के बजाय आलोचकों की निजी पसंद-नापसंद ही आलोचना की धुरी बनी हुई है, इसीलिए पंजाबी आलोचना में अव्यवस्था मची हुई है।

? : मुहब्बत की शिद्दत को आपने कौन-कौन से रूप में देखा ? मैंने उसकी दीवानगी आपकी कलम में दानिशमंदी के रूप में उतरती देखी है, पर इसकी दीवानगी कौन से बीज में थी, उस बीज की कोई बात करेंगे ?

ग : अमृता जी, मैं मुहब्बत को एक बहुत ही पाक इबादत की तरह, मनुष्य के ईमान की तरह या उसकी होनी के पवित्र मुजस्सिमे की तरह मानता आया हूं। मेरे लिए जिस्म मुहब्बत के रास्ते में एक अड़चन की तरह आया है। जिस्म का मोह होते हुए भी इसके भोग की परिभाषा मुझसे नहीं की जा सकी। इसका कारण हमारी समाजी क़द्रें-क़ीमतें भी हैं। आर्यसमाज द्वारा दी गई वीर्य की परिभाषा हमारे कई नौजवानों के लिए अभिशाप बनी। घरेलू माहौल में सैक्स की पाबंदी हमारे मनों में सैक्स के लिए डर पैदा करती है, उत्साह नहीं। मैं भी कई बरस इसका शिकार रहा। एक दो ख़ूबसूरत लड़कियां ज़िंदगी के वीराने में बहार बनकर आईं। पहल भी उनकी तरफ़ से ही थी। पर मैं उनकी आत्मा को खोजने का शैदाई बना रहा। सौ-सौ पन्नों के ख़त लिखता रहा और आख़िर में वह

मुझसे बदज़न होकर चुप हो गईं। शायद वह जिस्म तलाश कर रही हों। रूह और जिस्म की कशमकश में वह खूबसूरत लड़कियां मुझसे खो गईं। रूह की तलाश एक लम्बा सिलसिला है। इतना धीरज, ठहराव और इंतजार कौन करे। एक लड़की से मैं बीस बरस मुहब्बत करता रहा चुपचाप। बिना कोई दस्तक दिए! उसे देख लेता तो जैसे बरसों की प्यास मिट जाती। फिर उसका विवाह हो गया और मेरा भी। लेकिन वह मुहब्बत की शिद्दत मेरे मन में क़ायम रही। उसकी याद मेरी कीमती जायदाद की तरह मेरे साथ रही ! बीस बरस बाद उसे उसके शहर जाकर देखा तो इतनी खुशी मिली कि दिसंम्बर की उस ठंडी रात में भी मैं सारी रात वीरान सड़कों पर घूमता रहा—शराबियों की तरह, पागलों की तरह। फिर एक बार मैंने उसे रास्ता चलती को रोक कर बुला लिया।(मैंने पहले कभी उससे दो बोल भी सांझे नहीं किए थे, सिर्फ़ किसी आदमी के ज़रिये मुझे उसके खत ही मिलते थे)। एकदम आंखों में वे-पहचानगीला कर बोली (जैसे पहचाना न हो) "जिसे आप जानते नहीं, उसे बुलाते हुए शर्म नहीं आती…।" मेरे दिल में जैसे किसी ने ज़हरीला खंजर घोंप दिया हो। मैं और मेरी रूह जगह-जगह से छिल गए। मैंने अपने एक सयाने मित्र को अपना दुख बताया। वह हंस कर वोला "बीस बरस तू एक बोझ उठाए फिरता रहा, अब शुक्र कर कि तेरी पीठ और रूह उससे आज़ाद हो गई है। अब तू और तेरी रूह आज़ाद फ़िज़ा में सांस ले सकेंगे…"

बीवी आई—उसे शायद मेरी भूख का अंदाज़ा हो गया था, उसने कई बरस मुझे अकेला नहीं छोड़ा। अदीबों में शिद्दत ज्यादा ही होती है, चाहे यह सैक्स की हो, या अहसास की हो या जज़बात की। यह औरत मुझे दोस्त-जैसी मिली है, मेरी हर ज़रूरत पूरी करने का जतन करती है…पर अभी भी मन के किसी कोने में खयालों की एक परछाईं खड़ी सोचती है 'कोई हो जो मुझसे इंतहा की मुहब्बत करती हो—चिलचिलाती धूप में, धुआंधार बारिश या तल्ख अहसासों की गर्मी में मेरा इंतजार करती हो और मेरे पहुंच जाने पर हल्का-सा हाथ पकड़ कर कहे 'आ गए ? तुहें ठंड तो नहीं लग रही—आओ चलो, कहीं गर्म काफ़ी पियें—!'

? : सातवां सवाल आपके मन की मिट्टी के हवाले करती हूं जिसकी धूप भी आपको बनना है और जिसका पानी भी आपको, मुझे तो सिर्फ़ आपके जवाब के हरे पत्ते देखने हैं…

ग : अमृता जी, इतिहास में से कई बार कई सुलगते हुए प्रश्न उभरते हैं जिनका जवाब उस समय के अदीबों को देना होता है। साहित्य की एक मिनट की खामोशी भी बड़ी ही खतरनाक सिद्ध हो सकती है। मेरे खयाल में मेरी मिट्टी उन प्रश्नों के शाश्वत उत्तर पैदा करेगी, मनुष्य को और उसकी होनी को सतरंगी झूले की तरह कई रंग और खूबसूरती बख़्शेगी। मनुष्य की होनी के बारे में मैं सदा आप्टीमिस्टिक रहा हूं, आशावान रहा हूं। चाहूंगा कि मेरी क़लम सत्य का आधार बने। अगर मरना

भी पड़ा तो भी क्या है—बीस बरस बाद या अभी ही—क्या फ़र्क़ पड़ता है—समझौतावाद मुझे अच्छा नहीं लगता। गुरु गोविन्द सिंह की तलवार पर लिखे हुए अक्षर मैंने पढ़े हैं "मैं कभी हार नहीं मानूंगा।" मेरे पात्र भी ज़िंदगी जीने की लालसा रखते हैं—सत्य, संघर्ष और ऊंची क़द्रों-क़ीमतों वाली ज़िंदगी।—और अमृता जी, मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मेरे पात्र हारेंगे नहीं— आमीन !

मनजीत टिवाणा से सात सवाल

? : मनजीत ! किसी भी कलाकार की ज़िन्दगी के खुले दरवाज़े से जो कला बाहर आकर दुनिया के सामने उजागर होती है, उसे सब जानते हैं। पर दुनिया के जो भी हादसे उस खुले दरवाज़े में से अन्दर लांघते हैं, उन्हें कोई नहीं जानता। तुझे मैं शायरों की नई पीढ़ी की सबसे अच्छी शायरा मानती हूं, इसलिए पीढ़ी अन्तर के ऊपर से अपना हाथ बढ़ाकर, तेरे साथ हाथ मिलाकर, पूछना चाहती हूं कि दुनिया के कौन-से हादसे तेरी शायरी का दर्द बने हैं ?

म : दीदी ! मेरी ज़िन्दगी का सबसे बड़ा दुखान्त यह है कि उम्र के आने वाले बरस में मैं वक्त से पहले जीने लग पड़ती हूं। मैं अभी नवीं जमात में पढ़ती थी, जब मेरी उम्र के तेरहवें बरस को बीसवां बरस लग गया था। मुझे किसी के साथ बेपनाह इश्क़ हो गया था।

राह में मज़हब की दीवार थी, मैं सिख जाटों की बेटी थी, और वह मुसलमान लड़का था। मेरे घर की पृष्ठभूमि जागीरदारी निज़ाम की थी और उसके घर की साधारण। मैं दौलत की दीवार भी लांघ सकती थी, मज़हब की दीवार भी, पर उस वक्त मेरे सामने तीसरी दीवार आ खड़ी हुई। मैं वह तीसरी नहीं लांघ सकी थी···

तीसरी दीवार वह हादसा था, जिसने मेरी आंखों के आगे अंधेरा ला दिया···

अचानक पता लगा कि मेरी बड़ी बहन भी उसी को चाहती थी। उस कमबख़्त ने जब मेरी बड़ी बहन के आगे झोली पसार कर कहा—यह मनजीत मेरी झोली में डाल दो !—तब उस वक्त मुझसे मेरी बहन का रोना नहीं सहा गया···

और मैं कई बरसों के लिए एक अन्धेरे में लिपट गई···मुझे लगता है कि मैंने साहिबां की तकदीर भी पाई है। मेरे भाई को भी मेरे उस मुसलमान दोस्त का ज़िक्र नागवार था और मैंने साहिबां की तरह अपने मिर्ज़ा को खो दिया कि भाई की पगड़ी को लाज न लगे···

? : फ़ज़ल शाह ने यह तो कहा था कि जो मिली "गुड़ती" सारे आशिकां को वही सोहनी के मुंह लगाओ रे, पर उसने "गुड़ती" का नाम नहीं बताया। तुझे भी

ज़रूर "गुड़ती" तो वही मिली, पर वह "गुड़ती" क्या होती है, उसका नाम कोई नहीं जानता···

म : और आशिकों को कौन-सी "गुड़ती" मिलती है, मैं वह तो नहीं जानती, पर मुझे जो "गुड़ती" मिली थी, वह जानती हूं···

मैं घर की पांचवी बेटी थी। जागीरदारी घर में बेटों की आमद पर मुबारकें बांटी जाती हैं, बेटियों की आमद पर नहीं। मैं जनमी, तो शगुन की जगह शोक बांटा गया था···मेरी मां से कहा गया कि मुझे पैदा होते ही गर्दन घोंट कर वह मार दे···मां दर्द के साथ भी बिलख रही थी, ऐसी आवाज़ों के साथ भी बिलखने लगी। कहने लगी—यह लो लड़की, मुझसे अपने हाथों से तो नहीं मारी जाती, आप लोग खुद मार दो !

उस वक्त घर की एक बुर्जुग औरत ने मुझे अफ़ीम देकर धूप में फेंक दिया ···जानती हूं किसने अफ़ीम दी थी, पर मैं उसका नाम नहीं लेना चाहती; रिश्तों को लाज क्यों लगाऊं···

घर का एक पुराना नौकर होता था, गेंदाराम। उसने मुझे सबसे चोरी खट्टा दूध पिलाकर, अफ़ीम का असर बेकार कर दिया, और मुझे, धूप में से उठाकर मेरी मां की बगल में छिपा दिया···

सो दीदी ! मौत की "गुड़ती" लेकर जन्मी हूं, इसलिए मौत जैसे सारे हादसों में से लांघ सकती हूं···अब जब भी कोई नया हादसा होता है, हंस छोड़ती हूं—एक "गुड़ती और सही···

? : सो नज़्में खट्टा दूध होती हैं, जो हर हादसे का ज़हर चूस लेती है···

म : मेरा दूसरा इश्क भी हाथ में छुरियां पकड़कर मेरे बरसों को ज़ख्मी करने के लिए आया था। आज से राम बनवास जितने चौदह बरस पहले की बात है। जब मैं किसी के मोह में भीग गई, तब एक दो भले लोगों ने मेरे कानों में कहा था "यह इन्सान तुझे सिर्फ़ ज़ख्म देगा"—और मैंने कहा था "अच्छा, फिर वे ज़ख्म भी महक बांटेंगे"—और मेरी वह बात सच ही निकली है, उसके लगाए हुए ज़ख्मों ने मेरी नज़्मों की सूरत में सिर्फ़ महक बांटी है···

उसकी दोस्ती फूलों की तरह मेरे माथे में खिली थी। पर उसकी उम्र भी फूलों की उम्र जैसी थी। बहुत छोटी। फूल मुरझा गए पर उनकी महक मैंने घूंट भर कर पी ली थी। वही महक नज़्मों में डाल दी···

लड़कियां जैसे सूखे हुए फूलों को किताबों के पन्नों में बंद कर छोड़ती हैं, मेरा उसमें यकीन नहीं। मैं सूखे हुए फूलों को नहीं संभालती। मेरा रिश्ता तो महक के साथ था···

चाहती ज़रूरी थी कि उसका साथ मुझे मेरे अपने बन्धन से मुक्त कर दे, पर ऐसा हुआ नहीं। मन की सारी हालत को एक नज़्म में कह सकी थी—

लड़की कांच की बनी हुई थी, और लड़का मांस का

लड़की ने लड़के की ओर देखा, और कांच ने मांस से कहा
मुझे सारी की सारी निगल जा
लड़के ने अपनी बड़ी आंतड़ी के छोटे हाज़मे बारे सोचा
लड़की फिर बोली—डरपोक !
कम-से-कम मुझे शो-केस से तो मुक्त कर !
सड़क पर रख ! और तोड़ दे !
पैरों ने चमड़ी के नाजुक होने के बारे में सोचा
लडकी फिर बोली—सोचना है तो घर जाकर सोच !
सड़क पर तेरा क्या काम ?
मैं तो शो-केस में ही बोलती रहूंगी···

? : नई पीढी की नामवर ! नई पीढ़ी के ज़हनी नुक्ता-ए-नज़र बारे क्या कहना चाहेगी ?

म : इस दूसरी मोहब्बत ने मुझे बहुत मैच्युरिटी दी है। इसलिए कह सकती हूं कि आज के लड़के विण्डो शॉपिंग के लिए हर वक्त तैयार हैं। ब्लडी बास्टर्डज़। रिश्ते हिसाब का सवाल हो गये हैं, बहुत गिनती-मिनती वाले। और ये गिनतियां करने वाले अपने आप से भी छिपते फिरते हैं···

मैंने जिससे मोहब्बत की, वह बढ़िया शायर था और उसने शायर होकर भी चाहा कि मैं शो-केस से मुक्त न होऊं···

दीदी ! वह अकसर मेरे दरवाज़े के एकदम पास आकर ऐसे पीछे मुड़ता रहा, जैसे उसका पैर अंगारों पर रखा गया हो···

पर इस मैच्युरिटी ने मुझे धरती, अम्बर जितना विशाल कर दिया है। जब छठी में पढ़ती थी मां से कहा करती थी "मेरा ब्याह कर दे ! वहां, जहां घर में हीरे मोती हों, कारें और बग्घियां हों ! मैं हीरे, मोतियों का शृंगार करूं, और कारों, बग्घियों में बैठकर दुनिया के बागों की सैर करूं···"—और आज यह हालत है कि मैं घर के मकान में से या ज़मीन में से भी दो कदमों की जगह नहीं लेना चाहती···

यह फकीरी मेरी अमीरी बन गई है···

बात यह है दीदी ! कि एक तगड़ी औरत के साथ जीने के लिए एक तगड़ा मर्द चाहिए और आज के मर्द ब्लडी बास्टर्डज़···

? : मनजीत ! तूने एम० ए० इंग्लिश में भी किया है, साइकोलॉजी में भी। और जो थीसिस लिखा है उसका विषय भी गहरा है "पर्सनेलिटी ऑफ क्रिएटिव राइटर्ज़", इसलिए तेरे मुंह से स्वयं का और हालात का विश्लेषण अहमियत रखता है···

म : हां दीदी ! मैं खुद सोचती हूं कि अब सैल्फ़ जस्टीफिकेशन का वक्त नहीं, सल्फ़ अनेलेसिज़ का वक्त है···

मेरे तजुर्बों की अमीरी में जो हादसे शामिल हैं, उन्हें बड़े ठण्डे मन से अने-

लाइज़ कर सकती हूं—

पहला हादसा मौत की "गुड़ती" वाला था। और यह फ़र्क़ सिर्फ़ आंखों देखा फ़र्क़ नहीं था, खुद भोगा हुआ फ़र्क़ था कि लड़की का जन्म हमारे समाज में कितना भाग्यहीन माना जाता है···

दूसरा हादसा—अमीर भूत का गरीब वर्तमान था। हमारे घर पर वे दिन भी आए थे जब भर सर्दियों में, पहनने को पूरे गर्म कपड़े नहीं होते थे। स्कूल जाना होता था, तो जो बच्चा साइकिल पर आगे बैठता था, वह स्वेटर पहन लेता था, क्योंकि उससे सामने की हवा टकराती थी, और जो पीछे बैठता था, वह आगे वाले की पीठ की ओर में हो जाता था, इसलिए वह अपने लिए स्वेटर की ज़रूरत नहीं समझता था। दूसरे कपड़े भी इतने कम थे कि आज के कपड़े कल को पहनने के लिए, रात को धोकर सुखा लिए जाते थे···

तीसरा हादसा—घर की बड़ी बेटी के ब्याह की नाकामयाबी थी, जिसका मारक असर सारी छोटी बहनों की ज़िन्दगी पर स्वाभाविक पड़ता रहा···

और सबसे मारक हादसा, बाकी बहनों के साथ नहीं, सिर्फ़ मेरे साथ गुज़रा कि मेरी साफ़गोई मेरी बहन को बर्दाश्त नहीं होती थी, इसलिए एक रात मेरे कमरे का ताला तोड़कर, मेरा सामान बाहर फेंक दिया गया और मुझे घर से निकाल दिया गया। मैं दस साल से हॉस्टल के एक कमरे में रहती हूं···

दीदी! मैंने तो अपनी उम्र को तजुर्बों के बदले इस दुनिया के पास गिरवी रख दिया है, वह ऊपर वाला आकर खुद छुड़ा लेगा, इस बात का मुझे पूरी तरह पता है···

? : मनजीत, तेरी एक नज़्म रूह को हाथ डालती है "कहां काटेगा रात रे टूटे तारे!"

म : इस नज़्म की पृष्ठभूमि भी वही रात है, जब मुझे घर से बाहर सड़क पर आना पड़ा था। रात के बारह बजे स्कूटर लेकर स्टेशन पर जा बैठी थी·· वह भयानक रात मेरी हड्डियों में उतरी हुई है···सवेरे जब गाड़ी आई, मैं किसी हाल चण्डीगढ़ पहुंची और हॉस्टल की वार्डन से मिन्नतों के साथ एक कमरा लिया। पता नहीं कितनी देर तक कमरे की छत की ओर देखती रही कि सचमुच मेरे सिर पर छत है···

मैंने ज़िन्दगी में दो बार मोहब्बत की थी, और वो दो उदासियां ही मेरे अंग-संग थीं! मैं सोचती हूं—कि इन सब हादसों ने मुझे वीरानगी, रवानगी, त्याग और उपरामता का ऐसा अहसास दिया है कि किसी एक टुकड़े के साथ नहीं, पूरी धरती के साथ मेरा रिश्ता बन गया है···धरती के साथ मेरा नाल का रिश्ता है···

मां जिन्दा है, बीमार है, इसलिए हर हफ्ते चण्डीगढ़ से उसे देखने के लिए पटियाला जाती हूं। वह उसी घर में है जिस घर में से मुझे निकाला गया था, इसलिए वह दहलीज़ लांघनी मेरे लिए एक खूनी चनाब को पार करने जैसी

मुश्किल बात है, पर मैं वह दहलीज़ पार करती हूं, मां के पास दो घण्टे बैठती हूं, और वापस आ जाती हूं। मैं उस घर में कभी रात नहीं रही···कभी नहीं रहूंगी···

वैसे भी 1947 में जन्मी थी, हिन्दुस्तान की तकसीम के वक्त, जिस वक्त देश की सारी धरती एक युद्धभूमि बनी हुई थी। मैं युद्धभूमि का फूल हूं···इस फूल की जड़ों में मेरा अपना लहू है···

और जिस बूटे को मैंने अपने लहू के साथ सींचा है, मैं नहीं चाहती कि उसे फ्रस्ट्रेशन के कड़वे फूल लग जायें। इसलिए सब हादसों के बावजूद मैंने ज़िन्दगी का दरवाज़ा बंद नहीं किया सोचती हूं कि इस खुले दरवाज़े से शायद कोई अच्छा इन्सान अन्दर आ जाए।

अब मैंने अपने अन्दर के वृक्ष से कह दिया है कि वह बाहर वाले वृक्षों की छाया से न लड़ा करे!

अब मेरा तसव्वुर कभी इस दरवाज़े में बांवरी हवा बनकर आता है, कभी टूटा हुआ तारा बनकर रात काटने को मोहलत मांगता है। कभी मौत भी मित्र बनकर आती है, मैं उसके साथ हाथ मिलाती हूं और वह मेरी तकदीर की लकीरें अपनी हथेली पर रखकर, मुझे और जीने की मोहलत दे जाती है···पता नहीं जीने के इस वक़्त को मोहलत कहूं या सज़ा···

अपना आप कई बार इतना यतीम लगता है कि शहर के यतीमखाने की ओर चल पड़ती हूं और उन बच्चों को रोटी खिलाकर लौट आती हूं।

यह यतामत का अहसास शायद उन सब में होता है, जो कुछ सोचने और समझने के समर्थ होते हैं। हमारी पीढ़ी का यह सबसे बड़ा दुखान्त है कि हम मां-बाप के होते हुए यतीम हैं···बहन-भाइयों के होते हुए भी यतामत भुगतते हैं···

? : हां मनजीत! अगर सोचने की ज़हमत गवारा करें, तो राज्-सरकारों के होते हुए भी लोग यतीम हैं···एक आखिरी सवाल पूछती हूं कि उस सारी तोड़-फोड़ में जो मनजीत साबुत रह गई है, उस साबुत मनजीत का बल किस जगह पर है?

म : वेन वी आर सराउण्डिड बाइ लोनलीनेस, फैंटेसी इज़ आवर एस्कॉर्ट···दीदी, सोचा था यह राज़ की बात किसी को नही बताऊंगी, पर आपने अपना हाथ उसी जगह पर रख दिया है···

आपकी एक कहानी में टप्परीवासियों की बात आती है कि उनकी औरतें अपनी-अपनी घघरी के नेंघ वाली जगह (कमर का वह हिस्सा जहां नाड़ा बांधते हैं) पर अपने मनचाहे मर्द का नाम खुदवा लेती हैं, जिसे कोई नहीं देख सकता··· बस यह समझ लो कि मैंने अपने नेंघ वाली जगह पर रब्ब का नाम खुदवाया हुआ है···

दीदी, हसरतों की जो आग किसी भी घर के चूल्हे की आग नहीं बन सकी, उसे मैंने यज्ञ की अग्नि बना दिया है। योगी जिन छह चक्करों में से लंघा कर अपने प्राण मस्तक में ले जाते हैं, मैंने उन्हीं छह चक्करों में से अपनी आग को लंघाया है,

और अब वह मेरे माथे में दिये की लौ की तरह जलती है···

यह वह लौ है, जिसकी रोशनी को मैं अपनी नज़्में बनाकर घर-घर बांटना चाहती हूं···बचपन में मैंने एक बार मर कर देखा था, इसलिए अब जितनी मर्ज़ी मौतें आ जाएं, इसका फ़िक्र नहीं···पर कभी-कभी इस तरह महसूस होता है कि रब्ब ने एक बार सपना देखा था और उसको शरीर पहनाकर धरती पर भेज दिया···अब मैं अपनी नज़्मों को शरीर पहनाकर धरती पर छोड़ रही हूं···

योग जॉय से सात सवाल

? : योग ! मैं इतना जानती हूं कि रोहतक में आपकी अपनी कुछ जमीन भी है, और आढ़त की एक दुकान भी। पर वह सब कुछ छोड़कर आपने कंधे पर कैमरा डाल लिया और पैरों में रास्ते बांध लिये। आप यह बताइये कि आपके इश्क की इब्तदा किस तरह हुई थी ?

यो : इब्तदा से भी पहली सूरत यह थी कि मुझे अपनी तस्वीरें खिचवाने का बहुत शौक था। शौक नहीं, एक दीवनगी थी। फिर, 1956 की बात है, मेरे जन्म दिन पर किसी ने मुझे एक कैमरा तोहफा दे दिया, जो जिंदगी में बहुत अहम जगह रखता था···

जानता हूं कि इस वक्त आगे आप मुझसे क्या पूछेंगी। और यह भी जानता हूं कि मैं जवाब को अपनी किसी जेब में नहीं छिपा सकता। आपके इंटरव्यू आदमी की तलाशी लेने जैसे होते हैं। इसलिए खुद ही बता देता हूं कि वह अहम दोस्त एक लड़की थी—आशा। लगा उस तोहफे के लिए मुझे अपने हाथ भी अर्पण करने थे और कंधा भी। पैरों से बांध लिया···आपने रोहतक में गांव वाली जमीन की बात की थी, वह अभी भी है और उसका काम मेरे मुनारे करते हैं। वह आढ़त की दुकान भी है, जहां मेरे मुनीम काम करते हैं···

लगा—वह जो तस्वीरें खिचवाने का शौक था, उसमें मेरे नैन-नक्श के सिवाय मेरा कोई हुनर शामिल नहीं था। शक्ल-सूरत तो खुदा का हुनर था, मेरा नहीं। कैमरे वाला तोहफा मुझे मेरे हुनर का इश्क लगा गया···

? : आपकी पच्चीस बरस की कमाई को मैं आपके इश्क की इंतहा नहीं कहूंगी, पर 1983 वाले इंडिया ऐंड कामनवैल्थ के सिलवर मैडल की मुबारक ज़रूर देती हूं। और इस हुनर के वस्फ आपके मुंह से सुनना चाहूंगी···

यो : मैं सोचता हूं कि किसी भी अहसास को बयान करने में जितना वक्फा पड़ जाता है उसमें उतनी ही मिलावट पड़ जाती है। कई चेतन संकोच, लिहाज और खादारियां राह में घायल हो जाती हैं। पर फोटोग्राफी ऐसा माध्यम है, जो खयाल में और अमल में, वक्फा नहीं पड़ने देती। इसलिए सहज और स्वाभाविक सोच का क्वांरापन नहीं टूटता।

एक और बात यह—कि लोग लफ़्जों की इबारत में से अपने-अपने अर्थ निकालते हैं, उस माध्यम में, कई तरह के अर्थों को मिला सकने की गुंजाइश होती है। पर फोटोग्राफी हमेशा इकहरे अर्थ वाली होती है। उसके अर्थ को कभी भी अनर्थ नहीं बनाया जा सकता।···अखबार में छपी हुई किसी खबर से भी लोग मुकर सकते हैं, पर तस्वीर से नहीं मुकर सकते। यह तो ईश्वर की पक्की गवाही होती है।···इस हुनर में कल्पना शामिल होती है, पर तब भी उसकी जड़ें हकीकत की ज़मीन में होती हैं, जो उखाड़ी नहीं जा सकतीं···

? : कभी इस माध्यम की कोई खामी भी सामने आई है ?

यो : ज़रूर आई है। वह यह कि सपने की तस्वीर नहीं खींची जा सकती। शायर अपने सपने के बारे में नज़्म लिख सकता है, चित्रकार उसके रंगों को कैनवस पर उतार सकता है, सायकाइट्रिस्ट उसका अनैलिसिस कर सकता है, पर बिचारा फोटोग्राफर···

? : आपने अपने इस हुनर को लोगों के दुख-सुख के नाम कहां तक अर्पित किया है ? और तस्वीरों के जरिये वह कुछ कहां तक कह सके हैं, जो वैसे कह सकना मुमकिन न होता ?

यो : मैंने एक अखबार की नौकरी करने के वक्त इंटरव्यू में कहा था कि मुझे इसमें कोई दिलचस्पी नहीं है कौन प्रसिद्ध आदमी किस प्रसिद्ध आदमी से हाथ मिला रहा है, मैं अपना हुनर उन लोगों के लिए बरतना चाहता हूं, जिनका कोई नाम नहीं होता, कोई अस्तित्व नहीं होता। मेरी दो हजार से ज्यादा तस्वीरें अखबारों और मासिक पत्रिकाओं में छपी हैं, जो गगन-स्पर्शी इमारतों के सामने, सड़कों पर सोने वाले और बहुत ही नगण्य हो गए इन्सान की दास्तन हैं—या झुर्रियों से भरे हुए उस चेहरों की कहानियां हैं, जिन्हें कोई लफ़्ज नहीं नसीब हुआ···या कच्ची दीवारों पर चित्रित उन फूल-बूटों और मारों—चिड़ियों की गवाहियां हैं, जिनका किसी हुनर में शुमार नहीं होता···

एक तस्वीर आपको दिखाता हूं, एक कब्र पर सोए हुए आदमी की। इस तस्वीर को खींचते समय मैंने अपने कैमरे वाले हाथ को बड़ी मुश्किल से कांपने से रोका था। ऐसा लगा—जैसे, कब्र के अंदर सोया हुआ आदमी और कब्र के बाहर सोया हुआ आदमी, एक दूसरे को अपनी दास्तान सुना रहे हों···

कैमरे के शटर पर रखी हुई उंगली वाला पल बड़ा अजीब पल होता है। उस समय अपनी सैन्सिटिविटी और एलर्टनैस दोनों एक साथ, एक समय में, हाजिर होनी चाहिए···

आपने लोगों के दुखों से जुड़ा हुआ सवाल यह भी पूछा है कि जो बात बोल कर कह सकनी मुमकिन नहीं होती, वह तस्वीर की खामोशी में मैंने कहां तक कही है—उसके जवाब में एक तस्वीर की मिसाल देता हूं। उसका पाजिटिव इस वक्त मेरे पास नहीं है, पर नैगेटिव दिखाता हूं। यह एक फर्श पर बीस-पच्चीस

आदमी अव्यवस्थित से पड़े हुए हैं, पास ही, उनके बराबर में, कूड़ा फेंकने वाला रेढ़ा पड़ा हुआ है, खाली—जिससे ऐसा दिखाई देता है कि वह रेढ़ा अभी इन लोगों को कूड़े की तरह उठा कर लाया था और अब उन्हें फर्श पर फेंक कर, खाली हुआ है…

सरकारी इमारतों के आगे आग बुझाने के लिए हर समय छः बालटियां रखना जरूरी होता है—तीन पानी से भरी हुई और तीन रेत से। मैंने एक बहुत बड़ी सरकारी इमारत की तस्वीर खींचते समय, वह बालटियों वाला हिस्सा भी सामने रख दिया था, जो टेढ़ी-मूंधी पड़ी हुई थीं और जिनके टूटे हुए तले सामने दिखाई देते थे। इस तस्वीर को यह कहने की ज़रूरत नहीं थी कि टूटी हुई बालटियां कौन-सी आग बुझाएंगी…

इसी तरह दलाई लामा की एक तस्वीर मैंने उस समय खींच ली थी, जब वह किसी अंग्रेज औरत से हाथ मिला रहा था। उसके बारे में कहा जाता है कि वह कभी औरत का हाथ नहीं छूता, यहां तक कि एक बार बीमारी में एक औरत डाक्टर ने उसकी नब्ज़ देखनी चाही थी तो उसने औरत—डाक्टर के इलाज से इनकार कर दिया था। उसके बारे में मशहूर रिवायत का खंडन करने की मुझे जरूरत नहीं है, मेरी तस्वीर मुंह से बोलती है…

? : इस तखली की अमल में आपने अपने अंदर आने वाली तब्दीली का जायजा कई बार लिया होगा, पर कभी किसी किरदार में आने वाली तब्दीली का अंदाजा भी हो सका है ?

यां : एक बार एक अजीब तब्दीली का दृश्य आंखों से देखा था। मैं और रघु राय वैष्णो देवी गए थे। वहां एक अंधी औरत सीढ़ियों पर खड़ी लोगों से पैसे मांगती हुई देखी थी। हम उसकी तस्वीर खींचना चाहते थे, पर उसे उसका अंदाजा न हो और वही आजिजी उसके चेहरे पर बनी रहे, इसलिए बहुत दबे पांव हम उसके पास गए थे। तस्वीर खींच ली, पर उसे अहसास हो गया कि कुछ गैर-स्वाभाविक हुआ है। पूछने लगी—"आप कौन हैं? क्या कर रहे हैं ?" हमने हलीमी से कहा, "मां ! हमने आपकी तस्वीर खींची है। वह हंस-सी पड़ी। बोली—"बेटे, मेरी तस्वीर किस लिए ? मैं तो बूढ़ी हूं। और तुमने मेरा नाम भी नहीं पूछा।" हमने फिर हलीमी से कहा—"मां ! हमें अपना नाम बताइये।" तो उसने कहा "मेरा नाम बुंदो है।"

हमें उसका नाम बहुत सुन्दर लगा। यह हमने उससे कहा भी और उसने हमें अपने दुखों की कहानी सुनाई। उसका ताजा दुख यह था कि उसकी बेटी को उसके मर्द ने तलाक दे दिया था…

उस वक्त मैंने और रघु राय ने जेबों में हाथ डाल कर, जितने पैसे हाथ में आए निकाल लिए और उसके हाथ पर रख दिये। पर उसमें, हमारे देखते-देखते, रात से दिन होने वाली तब्दीली आ गई। उसने सारे पैसे हमें लौटा दिए। बोली—"नेक बेटो ! आज तुम मेरे घर चलो, मैं तुम्हें खाना खिलाऊंगी"… वह औरत हमने

पलों में एक भिखारिन से एक मां बनते देखी थी···

? : प्रैस फोटोग्राफर के तौर आप को कभी कोई मुश्किलें भी पेश आई हैं ?

यो : सिर्फ मुश्किलें नहीं, जान का खतरा तक सामने आता है। जब कत्ल होते हैं, कतल हुए आदमियों के पक्ष वाले जुलूस निकालते हैं, उस समय तस्वीर खींचनी होती है, पर विपक्ष वाले चाहते हैं कि इस तरह की तस्वीर अखबार में न छपे। उस समय रिपोर्टर तो लुक-छिप कर अपनी रिपोर्ट लिख सकता है, लेकिन जिसके हाथ में लिया हुआ कैमरा दूर से नजर आता हो, वह अपनी जान कैसे बचाएगा। कई बार मेरा कैमरा मेरे हाथ से छीना गया है, फिल्म फाड़ी गई है। छोटी-मोटी धींगा-मुश्ती अकसर हो जाती हैं। लेकिन एक बार मुझे बहुत चोटें लगी थीं। कुछ दिन अस्पताल में भी रहना था। इस मसले को सामने रखकर मैं प्रेस कौंसिल तक भी गया था, क्योंकि यह प्रेस की आजादी का सवाल है। मुझसे कहा गया कि मैं इस तरह का खतरा मोल न लिया करूं। लेकिन मेरा जवाब था कि हम प्रेस वालों ने तो खतरा मोल लेना है, आगे यह आपका काम है कि अपने कानूनों से आप कहां तक हमारी हिफ़ाज़त कर सकते हैं। हमारी नहीं, प्रेस की स्वतंत्रता की।

? : योग ! अब सातवें सवाल का और सातवें जवाब का हक आपको देती हूं, आपके उस अहसास को जो अनकहा रह गया है···

यो : एक बात तो मैं जान बूझकर अनकही रखूंगा, क्योंकि वह मेरी नजर में मुझे असीम करती है, पर जिनसे जुड़ा हुआ हूं उनकी सीमा को वह नागवार गुजरेगी। इसलिए मैं अपने ही हुनर की तरह खामोश रहना चाहूंगा।···साथ ही मैंने कहा था न कि सपने की तस्वीर नहीं खींची जा सकती···और वह, जो मेरी जागती आंखों का सपना है, मैं उसकी तस्वीर नहीं खींच सकता।··· पर एक बात कहना चाहूंगा कि फोटोग्राफी का हुनर वह कयामती हुनर है जिससे ख़ुदा भी कन्नी कतरता है। कहते हैं कि एक बार खुदा ने दुनिया के शायरों, कहानीकारों, चित्र-कारों और संगीतकारों को अपने दरबार में बुलाया, बातें कीं और फिर कहा कि आप सब, दुनिया में जाकर, आज की मुलाकात को अपने-अपने हुनर में बयान करना। सबने उसके विर्द लिखे, उसकी रोशनी को चित्रित किया, उसके हुस्न के गीत गाए और उसकी कई कहानियां जग में चल निकली, पर यहां कोई फोटो-ग्राफर नहीं था, इसलिए उसका यथार्थ रूप आज तक किसी ने नहीं देखा है।···

घनश्याम दास से सात सवाल

? : घनश्याम जी ! ज़िंदगी जब बुत-तराश बनती है, लहू मांस के साधारण इंसान में से एक कलाकार का बुत तराशने के लिए, अजीबो-ग़रीब हादसों की छैनियां हाथ में ले लेती है और अजीबो-गरीब हादसों की हथौड़ियां। आपके अंतर के कलाकार को उसने कैसे औज़ारों से तराशा था ?

घ : बड़े घातक औज़ारों से। कई बार यूं लगा कि मन-मांस के चिथड़े उड़ जाएंगे। हर बच्चे के लिए अपने मां-बाप की छाती पत्थरों की उस खान जैसी होती है, जहां वह निश्चल और निश्चित सोया हुआ होता है··· पता नहीं ज़िंदगी की कौन-सी आंख पत्थर के उस टुकड़े को देखती है और पत्थरों के गले से लगे हुए उस टुकड़े को तोड़कर अपने हाथों में ले लेती है···उस पत्थर से जब सैकड़ों परखचें टूटती हैं, उनका दर्द वही जानता है···

यह तो बरसों बाद पता लगता है कि उस पत्थर ने ऐसे बुत की सूरत अख़्तियार कर ली है कि रास्ता चलते अजनबी भी उसके सामने फूल पत्ते रख जाते हैं···

? : ज़िंदगी के क़हर को ज़िंदगी का करम कहने का वक्त पहली बार कब आया था ?

घ : मैं क़रीब चौदह साल का था, पौने चौदह साल का, जब एक सिपाही मेरा हाथ पकड़ कर मुझे कहीं ले चला। डर के मारे मेरे सांस सूख गए थे अब न जाने मेरे साथ क्या होने वाला है···

हिंदुस्तान के बंटवारे के वक्त मैं दस बरस का था। हम लोग बहावलपुर से उजड़ कर अबोहर आए थे और कितने ही समय कुरुक्षेत्र के कैम्प में रहे थे। उस अर्से में मौत ने मेरे बाप का साया भी छीन लिया और मेरे बड़े भाई का आसरा भी। मैं, मां और तीन छोटी बहनें, हम रुलते-रुलते बरनाले पहुंच गए थे, जहां मां लोगों के घरों का चौका-बर्तन करके गुजारे लायक रोटी कमाने लगी थी, और मैं लोगों के बर्तन मांजकर, मां का हाथ बटाने लगा था···

बहुत छोटा था, जब बहावलपुर में मेरे नाना जी मुझे गाना सिखाते थे। वही कुछ स्वर मेरी छाती में जमे हुए थे, जो बरनाले पहुंच कर, लोगों के बर्तन मांजते हुए और रोते हुए मेरे गले में पिघल आए थे· मैं राख सने हुए हाथों को

कई बार धोकर मंदिर चला जाता था और वहां अकेले बैठकर गाने लगता था…

जिस दिन मुझे सिपाही पकड़कर ले गया था, उस दिन शहर में पंद्रह अगस्त का जश्न मनाया जा रहा था। वहां कहीं मंदिर के पुजारी रामसरूप ने डिप्टी कमिश्नर के कान में कह दिया था कि एक छोटा-सा बच्चा है, जो बहुत ही अच्छा गाता है और उसने ही मुझे ढूंढ लाने के लिए सिपाही को भेजा था…

उस समय मेरे बदन पर कमीज़ तक नहीं थी। कमर पर बंधा पाजामा भी राख-मिट्टी में लिबड़ा हुआ था और उन लोगों ने मुझे उसी हालत में मंच वाले तख़्त-पोश पर खड़ा कर दिया। पुजारी रामसरूप ने मेरी पीठ पर प्यार से हाथ फेरा और मैं गाने लगा…

मिनटों में लोगों की तालियां मेरे कानों में पड़ने लगीं और रुपये मेरे पैरों के आगे बिछने लगे। ढाई सौ रुपया इकट्ठा हो गया। साथ ही डी० सी० साहब ने अपने कारिंदों को हुक्म दिया कि इस बच्चे को नए कपड़े पहना कर शाम की दावत के वक़्त उनके शामियाने में ले आया जाए…

अमृता जी ! वही पहली घड़ी थी, जब जिंदगी के क़हर को करम कहने का वक़्त आया था…

? : आज लोग आपकी आवाज़ पर फ़िदा हैं, ख़ासकर काफ़ी गाने में आपकी जो महारत है, वह बड़ी दिलकश है। इसके लिए आप अपना मुर्शिद किसको मानते हैं ?

घ : बुल्हे शाह को मैं अपनी रूह का मुर्शिद मानता हूं। मैंने जो कुछ पाया है, उनसे पाया है।

बहावलपुर का हूं, इसलिए ग़ुलाम फ़रीद को गाना मेरे लिए उसकी 'लैंदी' बोली में उसके साथ बातें करने जैसा है। उस सूफ़ी शायर को सिर्फ़ मैं ही गाता हूं। वह मेरा यार-मित्र है।

पर जिस मुर्शिद के आगे मैंने रूह की नयाज़ चढ़ाई है, वह बुल्हे शाह है…

दुनिया बाहरी इलामतें देखती है और उन पर ही फ़तवे देती है, पर रूह की रम्ज़ कोई नहीं जानता। सिर्फ़ आपको बता सकता हूं कि मैं रात को अकेले में जब विस्की का गिलास हाथ में लेकर बुल्हे शाह के बोल उठाता हूं तो मेरी रूह को कैसे ख़ुमार-सा आ जाता है :

निमाज़ पढ़ना कम्म ज़नाना, रोज़ा सर्फ़ा रोटी
उच्चियां बागां ओहोइ देंदे, नियत जिन्हां दी खोटी
मक्के मदीने ओहिओ जांदे, जेहड़े हुंदे कम्म दे त्रोटी
बुल्हिया ! जे होवे हुब्ब यार मिलन दी, रक्ख साफ़ अंदर दी कोठी

? : हां, घनश्याम जी ! बाहरी इलामतों से मिले हुए फ़तवों का दर्द मैं जानती हूं। थोड़े से दिनों की बात है, मैं शिव पुराण पढ़ रही थी। उसमें मैं ऐसी डूब गई कि समय का भी ध्यान न रहा। न जाने कितने घंटे गुज़र गए। अचानक मुझे सिगरट

की तलब हुई तो वे-अख़्तियार मुंह से निकल गया—शिवजी महाराज ! आप अब थोड़ी देर के लिए भंग पी लो और मैं एक सिगरेट पी लूं। फिर हम बातें करेंगे···

घ : यही ईश्वर को मित्र बनाकर पास बिठा लेना, किसी की समझ में नहीं आता···

आशक पढ़न निमाज़ शौक दी जिस विच हरफ़ ना कोई
बुल्ह ना फ़रके जीभ ना हिल्ले पाक निमाज़ी सोई

? : मैंने जिस दिन अखबार में पढ़ा था कि आपको उमर क़ैद की सजा हुई है, मुझे लगा था आज ग़ुलाम फ़रीद का और बुल्हे शाह का कलाम रो रहा है···

घ : उस हादसे में भी बाहरी इलामतें क़ुदरत के क़हर की थीं, पर उसके अंदर ही। क़ुदरत के करम का बीज छिपा हुआ था···1972 की बात है। मैं पटियाले से फ़्लाइंग मेल से रात के साढ़े नौ बजे दिल्ली पहुंचा था। घर पहुंचते-पहुंचते साढ़े दस हो गए थे। उस वक़्त घर की दहलीज़ें लांघते ही मां ने कहा "तेरे बहनोई की दूकान पर लड़ाई हो रही है आठ दस जने लाठियों से उसे मार रहे हैं, अभी ख़बर आई है कि तू उसकी मदद के लिए जल्दी जा···कौन जाने तेरे जाने तक वह ज़िंदा भी होगा या नहीं···"

मेरे माथे में उसी वक़्त खबर हो गई कि मेरे साथ कोई होनी घटने वाली है। एक वार मुंह से भी निकला "मां, तुम मुझे भेज तो रही हो, पर कुछ बुरा होने जा रहा है···"

लेकिन जाना था, चला गया। मेरे बहनोई की दूकान का झगड़ा चल रहा था। वह उसने बहुत समय से किराया पर ली हुई थी उसकी मालकिन उसे खाली नहीं करवाना चाहती थी, पर बाज़ार का एक और आदमी उस पर कब्ज़ा करना चाहता था। एक बार जबर्दस्ती उसने क़ब्ज़ा कर भी लिया था, लेकिन बाद में दरख़ास्तें देने पर वह फिर मेरे बहनोई को मिल गई थी। उसी सिलसिले में उन लोगों ने रात को फिर हमला कर दिया था।

"मैं तो घर से ख़ाली हाथ गया था। उनके हाथों से ही एक लाठी छीन कर उनका मुक़ाबला करने लगा। उनमें से किसी ने मेरी कमर में एक तेज़ चाक़ू घोंप दिया। उसी को मैंने अपने बदन से निकाल कर जब हाथ से उनकी तरफ़ फेंका तो वह एक आदमी के कुठौर लग गया···

वही हादसा था, जिसमें मैं बिलकुल निर्दोष था, पर मुझे उमर क़ैद की सज़ा सुनाई गई···

मैंने अपील की, पर साथ ही तिहाड़ जेल में मुझे रब्ब का इश्क़ लग गया। वहां मेरी कोठरी में मुझे स्वर मंडल और तानपूरा रखने की इजाज़त भी मिल गई और जेल वालों ने अपने फ़ंड में से मुझे हार्मोनियम भी ख़रीद दिया···मैं रियाज भी करता रहा, बाहर से दोस्तों को बुलाकर संगीत की महफ़िलें भी करता रहा, और घंटों साधना भी करता रहा···

न जाने कौन-सी शक्ति मुझ पर मेहरबान हो गई, ज्योतिष शास्त्र को पढ़े बिना, उसका ज्ञान मुझे हो गया।

वह इमर्जेन्सी के दिन थे। चौधरी चरन सिंह भी जेल में थे, प्रकाश सिंह बादल भी, पी० एस० भिंडर और सरदार आत्मा सिंह भी। मैं उनके बारे में जो भविष्य-वाणी करता रहा, वह सब सच होती गईं।

जेल के सारे कैदी मुझे गुरु जी कहने लगे और अपने-अपने दुखों के 'दारू' पूछने लगे···वह शक्ति आज भी मुझ पर मेहरबान है, किसी की जन्म-पत्री को एक नज़र देखना सिर्फ़ एक बहाना-सा बनता है, पर जो कुछ मुंह से निकलता है, वह आवाज़ कहीं अंदर से आती है और सच निकलती है···

अपने लिए उमर क़ैद की सज़ा सुनकर भी, अंदर से आवाज़ आई थी—मुझे तो जंगलों-वनों में घूमना है, मुझे यह दुनिया जेल की दीवारों में बंद करके नहीं रख सकती···

? : किसी और बड़े निजी मामले में भी अपनी साधना की करामत जैसी घटना घटते देखी ?

घ : एक रात क़यामत जैसी भयानक थी। घर से ख़बर मिली कि जिस छोटे से घर में मेरी मां, मेरी बीवी और बच्चे रहते थे, वह घर आज रात ख़ाली करवाया जा रहा है। वह घर मेरे पास किसी ने गिरवी रखा हुआ था। मैं जब घर में न रहा तो उन लोगों ने रातों-रात उसे गिरवी से छुड़ा लेना चाहा। मैं उन्हें घर तो लौटा ही देता, पर एक यही इल्तजा की थी कि मेरी ग़ैर-हाज़री में मेरे बीवी-बच्चों को घर से न निकाला जाए···

उस क़यामत वाली रात को मैंने शिवजी की आराधना करते समय अपना आप उन्हें अर्पित कर दिया···और सवेरे तड़के ही ख़बर मिली कि उन्होंने घर तो ख़ाली करवा लिया था, पर साथ लगते मंदिर वालों ने एक बहुत ही अच्छा कमरा मेरी मां को और बीवी-बच्चों को उस वक्त तक रहने के लिए दे दिया था, जब तक मैं जेल से बाहर न आ जांऊ···मेरी अपील से मेरी सज़ा उमर क़ैद से घटकर पांच साल हो गई थी, सो मैं 1978 में छुट गया था। मेरे घर वालों को उस अर्से में शिव जी ने अपने चरणों में शरण देकर रखा था···

कभी-कभी मुझे इस शक्ति से डर लगता है। डर इसलिए कि मन की कोठरी में अगर कोई नीचा ख़याल भी आ जाए, तो यह शक्ति उसकी पूर्ति भी कर देती है···डर शक्ति से नहीं लगता, अपने आप से लगता है कि मन की पवित्र कोठरी सदा पवित्र रहे !

आख़िर मैं हाड़-मांस की काया हूं, कभी कोई दुनियाबी कामना उसमें आ जाती है और मुझे उससे डर लगने लगता है···

एक घटना ऐसी भी हुई थी। यह मैं शायद और किसी को नहीं बता सकता ···पर आपको बता सकता हूं···जेल में मैंने एक बहुत सुन्दर लड़की देखी थी।

किसी की मुलाकाती होकर आई थी···मन भरम गया···एक उड़ता-सा खयाल आया कि अगर यह लड़की मुझे कभी प्यारे करे···चाहे एक पल, एक क्षण···

और जब मैं जेल से रिहा होकर आया, उस लड़की से मुलाक़ात हुई तो उसने एक ही मुलाक़ात में मुझे अपना आपा अर्पित कर देना चाहा···

उस समय मेरे पैरों तले की धरती मेरी नहीं रही थी। मैं उसकी कामना से चकाचौंध हो गया···ओ ख़ुदाया ! तुमने मेरी यही तृष्णा भी पूरी कर देनी चाही है···

मैंने अपनी कामना को झिड़क दिया। वह उम्र के लिहाज़ से मेरी छोटी-सी बहन या बेटी के बराबर थी···मैंने वह घड़ी संभाल ली, पर उसकी हैरानी अभी तक नहीं जाती कि मेरी उस नापाक इच्छा को भी कुदरत ने पूरी कर देना चाहा था···

? : हां, घनश्याम जी ! किसी शक्ति को धारण करना बहुत मुश्किल है, पर उससे भी मुश्किल उसका इस्तेमाल होता है। तंत्र जैसा इल्म भी ग़लत हाथों में काला जादू बन जाता है। एक सवाल और पूछना चाहती हूं, सातवां और आख़री सवाल। पर चाहती हूं, यह सवाल मेरे होठों पर न आए, आपकी साधना जैसी अवस्था के मुंह से निकले···

घ : एक सवाल सचमुच मेरे अंतर में पड़ा हुआ है, जिसका जवाब मैं वक़्त से मांग रहा हूं। वह ज़रूर कभी जवाब देगा। मुझे यक़ीन है···

मैं कोई एक बरस बाद या दो बरस बाद हाथ में एक झोला लेकर कहीं निकल जाता हूं। उस झोले में कपड़ों का एक जोड़ा होता है, शरीर के मैले कपड़े उतार कर बदलने के लिए और मैं अपने पास कुछ नहीं रखता। कभी हरिद्वार चला जाता हूं, कभी मथुरा-वृन्दावन···और वह कोई दो महीने मैं अपने आपके साथ बिताता हूं। जब गाता हूं तो अपने लिए गाता हूं। किसी महफ़िल के लिए नहीं···

शहर में जो कोई मुझसे संगीत सीखने के लिए आता है, मैं कभी उससे पैसा नहीं लेता। न ही उससे लेता हूं जो अपनी जन्म-पत्री दिखाने के लिए आता है। जिनकी मुरादें पूरी होती हैं, वह जबर्दस्ती कुछ देना चाहते हैं, तो उनसे कंबल ख़रीदवाकर ज़रूरतमंदों को बांट देता हूं···पर मैं महफ़िल वालों से पैसे लेता हूं क्योंकि बाल-बच्चे पालने हैं और महफ़िलों में वह गीत, ग़ज़लें और काफ़ियां गाता हूं, जो लोगों की फ़र्माइश होती हैं। पर मन की आरज़ू यह है कि मैं हमेशा अपने लिए गाऊं···मुझे किसी से पैसा न लेना पड़े···

मेरा बेटा बड़ा हो रहा है, वह जब घर संभालने लायक़ हो जाएगा, जी करता है, घर को उसके हवाले करके मैं मुक्ति पा लूं···

मैं बुल्हे शाह को गाते-गाते उस जैसा फ़क़ीर हो जाना चाहता हूं···उसका रूप··

यह जो मेरे और उसके बीच अभी एक फ़ासला है, मुझे वही फ़ासला तय करना है···

यही फ़ासला मेरे सामने मेरा आख़री सवाल है, जिसका जवाब मेरे पैरों को खोजना है···इच्छा ने खोज लिया है, पर पैरों के अमल ने अभी ढूंढना है···

अमर भारती से सात सवाल

? : भारती जी ! आज तो तेरा दिया तुझको सौंपूं वाली बात है। सवाल भी आपके और जवाब भी आपके, मैं तो सिर्फ़ कातिब हूं···बात यह है कि पिछले हफ़्ते जब कृष्ण अशांत आपका हाथ देख रहे थे, उन्होंने जो कुछ कहा वह मेरे कानों में पड़ा हुआ है। जो सवाल आपके हाथ की लकीरों ने सामने रखे, उनमें से ही मैं बारी-बारी से पूछती हूं और आप बारी-बारी में जवाब देते जाइये। पहली बात तो यह कि कृष्ण अशांत ने आपके हाथों की लकीरों से यह क़याफ़ा लगाया था कि आपकी उम्र का पहला हिस्सा, कोई इक्कीस-बाईस बरस तक का, ऐसा था जैसे किसी को अपने होने का एहसास तक न हो···अनहुआ जैसा। अब आप यह बताइये कि यह आपकी ही लकीरों की बताई हुई बात कहां तक ठीक है ?

भा : उनका क़याफ़ा सही है। लकीरों ने जो भी कुछ बताया है, ठीक बताया है। वह ज़िंदगी ऐसी थी जो अपने आप ही अपने सांसों की नदी में बहती रही। न मेरे सामने कोई दिशा थी और न मुझे नदी में तैरना आता था। उसे सूखे पत्ते जैसा भी कह सकता हूं, जो जिधर की हवा बहती है वह उधर को ही उड़ने-गिरने लगता है। मेरी हर चीज़ का फ़ैसला दूसरे लोग करते थे चाहे पिता, चाहे भाई और चाहे कोई रिश्तेदार। कोई आठ साल का था जब मेरा और स्कूल का रिश्ता टूट गया था। तीन कक्षा तक पढ़कर। सामने कोई ऐसा काम भी नहीं था जो मुझे अपना बना लेता। इक्कीस-बाईस बरस की उम्र तक मैंने कोई दस काम बदले होंगे, कभी पिता की किरयाने की दुकान पर बैठ जाता था, कभी भाई की दर्ज़ी की दुकान पर, सूई धागा लेकर। पिता ने अमृतसर वाली दुकान छोड़कर, जब लायलपुर के ज़िले में कपड़े की फेरी लगानी शुरू की, तो मैं भी कपड़ों की गठरी कंधों से लटकाकर हाथ में गज़ थामे गांव-गांव घूम-घूमकर आवाज़ लगाने लगा—लट्ठे, मलमलें, खासे, बोस्कियां ले लो। मुझे याद है, उन दिनों अंडे की बोस्की तीन आने गज़ होती थी···न मेरे पिता के काम का कोई डौल बैठता और न मेरा। पिता जी ने जब अमृतसर में गन्ने की फेरी लगानी शुरू की तो मैं भी गन्नों की भरी उठाकर फेरी पर जाने लगा। उन्होंने जब पकौड़ियों का छाबा लगा लिया, तो मैं उसकी फेरी लगाने लगा।

एक भाई तो दर्ज़ी था, लेकिन दूसरे भाई ने जब लायलपुर ज़िले के डिज-कोट के बस-अड्डे पर हलवाई की दुकान खोल ली, तो मैं लड्डू पेड़े बनाने लगा। सवारियों को लस्सी बनाकर भी पिलाता था और शिकंजबी भी। बस यह समझ लीजिए कि गरीब की औरत जैसे पड़ोसियों के लिए होती है, मैं भी हर किसी के लिए था, हर काम के लिए था...

? : आपके हाथों की लकीरों ने कृष्ण अशांत को यह बात बताई थी, कि इस अर्से में किसी का तगड़ा प्रभाव आपने कबूल किया था, लेकिन वह प्रभाव टिका नहीं। वह किसका प्रभाव था ?

भा : वह चौदहवें साल में एक बहुत बड़ा प्रभाव था, पंडित कर्त्तार सिंह फ़िलासफ़र का। वह हमारे अमृतसर वाले मकान में किरायेदार बनकर आए थे। उनकी पत्नी, फ़ीरोज़पुर कन्या महाविद्यालय वाले तख़्त सिंह जी की बेटी थी, बहुत पढ़ी लिखी। दोनों पति-पत्नी विद्वान् थे। उनकी बेटियां हरदर्शन कौर और हरकीर्त्तन कौर सिख समाज की पहली बेटियां थीं जिन्होंने क्लासिकी नृत्य और संगीत की शिक्षा भी ली, घुड़सवारी भी सीखी, और गतकाबाज़ी भी। इन बच्चियों का सिख समाज की ओर से बाइकाट किया गया था। इतना, कि जब इन बच्चियों का मंच पर कोई नृत्य होता, सिखों की ओर से वहां पिकटिंग की जाती थी, एकदम मंच का घेरा डालकर। इस बात के साथ यह भी बता दूं कि यही हरकीर्त्तन कौर थी, जो बाद में गीता बाली के नाम से फ़िल्म-कलाकार के तौर पर प्रसिद्ध हुई। इनकी यही कहानियां मेरे कानों से होती हुई मेरे दिल में बग़ावत के बीज बो गईं।

एक घटना इन्हीं दिनों में और हुई थी, जिसने मुझे सोच में डाल दिया था। मेरे बड़े भाई साहब अपने एक मित्र से एक दिन कह रहे थे कि मैं अपने बड़े बेटे को शान्ति निकेतन भेज रहा हूं, पढ़ने के लिए। वह मेरी उम्र का ही था। मैंने वह बात सुनी तो अपनी क़िस्मत के बारे में ठंडा सांस भरकर रह गया। लेकिन वह बात कहीं इतनी गहरी उतर गई कि मुझे तब तक तसल्ली का सांस नहीं आया जब तक कि मैं बड़े होकर शान्ति निकेतन नहीं गया। वैसे तो 1960 में गया जब चौंतीस बरस का हो चुका था।

पंडित कर्त्तार सिंह यूं तो हमारे घर में कोई दो बरस ही रहे थे, लेकिन यह उनके घर का प्रभाव था, जिसने लिखने-पढ़ने की एक गहरी लगन लगा दी। वैसे मैं वह दो बरस भी उनके निकट नहीं रह सका क्योंकि उनकी छोटी लड़की हर-कीर्त्तन से मेरी दोस्ती मेरी मां के कानों में चुगलियां बनकर पहुंच गई थी। हर-कीर्त्तन मुझे बाजा भी सिखाती थी, ताथैया-ताथैया भी, तो मैं सगे संबंधियों की नज़र में कुमार्ग पर पड़ रहा था। इसलिए मां मुझे अमृतसर से लायलपुर ले गई थी, जहां मैं भाई की हलवाई की दुकान पर बैठ गया था...

? : एक बात यह भी मेरे कानों में पड़ी थी कि करीब इकत्तिस साल की उम्र में आप के ख़यालों में बड़ी तब्दीली आई। ख़याल बदले तो पैर घुमक्कड़ हो गए...क्या वह

आपके विरक्त मन की पहली उदासी थी ?

भा : हां, इकत्तिस साल की उम्र में मुझे पहाड़ों की कशिश खींचने लगी। अगर साल में दो बार नहीं, तो एक बार तो ज़रूर किसी न किसी तरफ़ निकल जाता था। पैरों में खड़ाऊं नहीं होती थी, देशी जूती होती थी। कभी कुल्लू-मनाली, धरमशाला की तरफ़ निकल जाता था, कभी शिमले के गांवों में। एक बार तो पूरे साल ही वहां रह गया था। फिर चौंतीस साल की उम्र में पूरे भारत के भ्रमण के लिए निकला था, लेकिन शान्ति निकेतन पहुंचा तो पैर वहीं थम गए। वहां बैठकर मैंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर के गोरा नाविल का तर्जुमा किया. 'शान्ति निकेतन' नाम की किताब लिखी···

? : इसी समय किसी तगड़े प्रभाव का ज़िक्र किया था, कृष्ण अशांत ने···

भा : वह भी ठीक है। वह तगड़ा प्रभाव प्रभाकर माचवे का था, जिसने मुझे मेरे अस्तित्व की अहमियत का अहसास दिलाया था। उससे पहले मैं हुआ न हुआ बराबर था। तभी सोचा कि मैं कुछ कर सकता हूं। तब ही मैंने बंगाली सीखी। तब ही साहित्यिक हल्क़े में मेरी कुछ जगह बनने लगी, आदर-योग्य। उसी पहचान के सिलसिले में मैं आपके संपर्क में आया। उसके साथ मुझ में आत्मविश्वास भी जागा और मुझे दिशा भी मिली।

? : फिर कृष्ण अशांत के कहने के अनुसार आर्थिक पक्ष से और मान्यता के पक्ष से आपकी जिंदगी में एक बहुत बड़ा मौका आया, लेकिन कुछ सालों के लिए। एक नहीं शायद दो मौक़े···

भा : हां, कोई सात साल के लिए। सचमुच एक नहीं, दो मौक़े आए थे। एक साहित्य अकादमी का काम करने का। मैंने पांच किताबों को बंगाली से पंजाबी में तर्जुमा किया था। लेकिन रवीन्द्र ठाकुर के नाटकों का तर्जुमा करने का काम मुझे और बलवंत गार्गी को साझे में मिल गया—उसे नाटककार होने के नाते और मुझे बंगाली जानने के नाते। इक़रारनामा यह था कि तर्जुमे पर नाम भी दोनों का जाएगा और उजरत भी दोनों की सांझी होगी, आधो-आध। लेकिन जब काम का वक़्त आया, तो वह सारा मेरे ज़िम्मे आ गया। यहां तक कि तैयार तर्जुमे की दूसरी कापी करने का भी मेरे ज़िम्मे। तब मैंने काम करने से इनकार कर दिया। काम के और उजरत के बंटवारे का हिसाब मेरी किसी गणित में नहीं आता था। सो, यह मौक़ा था जो आया भी और गया भी।···दूसरा मौक़ा आया था—रोज़ाना अख़बार "नया हिन्दुस्तान" में नामधारी मत के बारे में लगातार लिखने का। किताबें लिखने का काम भी मुझे सौंपा गया था। कोई छह साल मैंने अख़बार में काम किया था। अख़बार के लेखों के अलावा बाद में कई पैम्फलेट लिखे थे और तीन बड़ी किताबें। पर फिर बलवंत गार्गी के हिसाब वाला हिसाब आ गया, और बात टूट गई···

? : उस वक़्त की अच्छी आर्थिक हालत की बात भी कृष्ण अशांत ने की थी···

भा : अकादमी के काम से मुझे कोई चार साल में सत्रह अट्ठारह हज़ार की आमदनी हुई थी। तभी मैंने हरि नगर में छोटा-सा मकान बनाया था, और होम्योपैथिक डाक्टर के तौर पर एक छोटी-सी दुकान भी बनवाई। पर दूसरे काम से अगर आमदनी का हिसाब लगाऊं तो वह सवा सौ रुपये महीना बनती है। बात यह थी कि हमारे गुरु जी हर साल मुझे बुलाकर एक बंद कमरे में बिठा कर पूछते थे कि तेरी रोज़ी-रोटी कैसे चलती है? तेरी मदद करनी है, पर इस साल हमारा हाथ तंग है···और उनका हाथ हर बरस उसी तरह तंग रहा, और मेरा मुंह हर बरस उसी तरह चुप रहा···

? : अब कृष्ण अशांत के कहने के मुताबिक आपके हाथ की जो लकीर सीधी वृहस्पति के पर्वत पर चढ़ती जाती है, आपके रास्ते में न कोई रोड़ा आना है न पत्थर, न दुविधा,···और साथ ही उन्होंने कहा था कि आपकी शनि की उंगली ऊपर के पोटे से अनामिका की ओर झुकती जाती है, जो योग-साधना का संकेत देती है। जानती हूं आप योग-साधना कर रहे हैं, सिर्फ़ मानसिक अवस्था के बारे में जानना चाहती हूं···

भा : आज की अवस्था, बहुत बढ़िया है। पूरी ज़िंदगी में कभी ऐसा नहीं था। कोई दुख-सुख मुझे अब छूता नहीं, वह जैसे मेरे चोले की किनारी को छू कर मेरे पास से गुज़र जाता है···

उर्मिल शर्मा से सात सवाल

? : मिथुन मलिका ! आज यह बताओ कि बुध देवता के राज्य में प्रजा का क्या हाल-चाल है ?

उ : वैसे तो लोगों की नज़र में बुध नपुंसक ग्रह है, पर मेरी नजर में वह नपुंसक नहीं, वह एक साथी मांगता है । वह अकेला अपने आपको अधूरा समझता है, इसलिए उसे लोग नपुंसक कह देते हैं । उसमें एक और खामी यह होती है कि जैसे साथी के साथ बैठता है उसी तरह का स्वभाव धारण कर लेता है। मसलन अगर गुणी बृहस्पति के साथ बैठता तो गुणी हो जाएगा, अगर तेजस्वी सूर्य के साथ बैठेगा तो तेजमय हो जाएगा । पर अगर शनि या शुक्र के साथ बैठेगा तो उन जैसा हो जाएगा, मौज-मस्ती करने वाला । वैसे बुध की अपनी शक्ति, उसे वाक् शक्ति देती है, गणित-गुण देती है, लेखन शक्ति देती है और खोज शक्ति देती है । मेरा बुध पंचम में हैं, विद्या वाले घर में और वह भी सूर्य के साथ । इसलिए उसने मुझे ज्योतिष विद्या भी दी है, लिखने की शक्ति भी। सूर्य ने इन गुणों को और विकसित किया है । यह मेरा बुध देवता तुला राशि में है, शुक्र की राशि में, इस-लिए उसने मुझे ज्योतिष-विद्या भी दी है, लिखने की शक्ति भी । सूर्य ने इन गुणों को और विकसित किया है । यह मेरा बुध देवता तुला राशि में है, शुक्र की राशि में, इसलिए उसने मुझे नृत्य कला का शौक भी दिया था । ऊपर से दो ग्रहों की दृष्टियां पड़ रही हैं—एक गुरु की और एक शनि की, जो अपने-अपने स्वभाव के अनुसार दो तरह का स्वभाव दे सकती हैं, पर अमृता जी ! एक योगायोग होता है कि जब गुरु और शनि इकट्ठे हों, तो शनि अपना स्वभाव त्यागकर, गुरु का स्वभाव कबूल लेता है । इसलिए इन दोनों दृष्टियों ने मेरे बुध को पौराणिक खोज का इश्क़ भी लगा दिया है···सो प्रजा का हाल-चाल बहुत अच्छा है ।

? : दोस्त ! तुम्हारी कुंडली में तीसरे और पांचवें घर के स्वामियों का परिवर्तन योग है । दोनों के स्वामियों ने घर बदले हुए हैं । यह बताओ कि दोनों की एक दूसरे के घर में किस तरह की मेहमान-नवाज़ी हो रही है ?

उ : पंचम भाव विद्या का होता है, तीसरा अपने बाहुबल का । पाचवें भाव के मालिक शुक्र का, तीसरे घर ने अपने बाहुबल से अतिथि-सत्कार किया है और तीसरे घर

के स्वामी सूर्य की, पांचवें घर ने अपने इल्म से मेहमान-नवाज़ी की है।

? : वैसे तो हर मर्द के भीतर तोला-माशा औरत भी होती है, और हर औरत के भीतर छंटाक भर मर्द भी! पर जिनका सूर्य तुला राशि का हो, उन औरतों के भीतर बहुत-सा मर्द होता है। रेशमी साड़ी में लिपटा हुआ मर्दाना हौसला और मर्दाना तर्क। क्या ख़्याल है?

उ : बिलकुल ठीक। मैंने अपने आपको कभी अबला स्त्री नहीं समझा। सात बरस की थी, जब देश का बंटवारा हुआ। अपना लहिया गांव छोड़कर जब करनाल आना पड़ा, मैं भाई के साथ मिलकर जंगल में से लकड़ियां चुना करती थी और उन्हें बेचकर घर के खर्च के लिए दादी को पैसे दिया करती थी। फिर गट्टा इलायची वाला खरीद कर, उसके छोटे-छोटे खिलौने बनाकर बेचती थी। कभी बेचारी-सी बनकर मां-बाप से पैसे नहीं मांगती थी। इसके अलावा तरबूज़ के बीज निकालकर उन्हें बेचती थी और अपनी पढ़ाई की फ़ीस देती थी। पांच जमातें पास कर लीं तो फ़ीस कुछ बढ़ गई थी। दादी ने कहा कि मैं पढ़ना छोड़ दूं, क्योंकि फ़ीस ज़्यादा हो गई थी। उस वक़्त मैं नलियां गोटे भरकर फ़ीस के पैसे कमाने कमाने लगी थी। सोलह लच्छों का एक चीरु होता है जिसके उलझे हुए तारों को सुलझाना होता है। एक चीरु को सुलझाते हुए सारा दिन लग जाता था और उसका एक रुपया मिलता था।

फिर दिल्ली आकर कीर्तन-मंडली में शामिल हो गई। चार पैसे कमाने के लिए। मशहूर फ़िल्मी तर्ज़ों पर खुद ही भजन बना लेती थी और गाती थी। मसलन, उन दिनों एक फ़िल्मी गीत हुआ करता था 'कभी आर कभी पार लगा तीरे नज़र, सईयां घायल किया रे तूने मेरा जिगर'—मैंने उस पर अपने मन से भजन बनाया था—'इक बार तो विचार कर मेरे मना! सारा जन्म गयो हरि के भजन बिना···'

फिर ब्याह हुआ तो कंघी-शीशे के शौक़ की जगह किताबों का शौक़ लगा लिया। मैट्रिक पास की, इंटर की, लायब्रेरी साइंस का कोर्स किया। पांच बरस नौकरी भी की। साथ ही बी० ए० भी किया। एम० ए० का भी फ़र्स्ट पार्ट किया था, पोलिटिकल साइंस में···

मर्दाना हौसला ऐसा है कि एक शाम पता लगा कि मेरे बाप को कुछ पैसों की सख़्त ज़रूरत है। उस वक़्त रात के दस बजे थे, वह भी सर्दियों की रात के। मैं घर से पैसे लेकर चल दी, पर आगे बस अड्डे पर जाकर पता लगा कि आखिरी बस निकल चुकी है। वहां आठ आने सवारी वाला रिक्शा था, जिसमें मैं बैठ गई, पांच सवारियों के साथ थी। पांचों मर्द थे। आज से आठ बरस पहले जनकपुरी के साथ लगता उत्तम नगर बिलकुल सुनसान जगह में था। रास्ते में ख़्याल भी नहीं आया कि मेरे साथ क्या बीत सकता था! आगे जाकर रिक्शे वाले ने बाहर की सड़क पर, बस अड्डे पर उतार दिया। उस सड़क से कोई फ़र्लांग भर रास्ता था,

झाड़ियों से भरा हुआ। मैं वहां से भी निडर गुज़र गई।

आगे पहुंचकर पिता गुस्सा हुए तो ख़्याल आया कि हाय ! मैं तो औरत थी, अगर रास्ते में उन मर्दों की नीयत बदल जाती···पर यह बात, उनके याद करवाने पर याद आई। इस तरह की कई घटनायें हैं—जब डर-खौफ़ याद नहीं रहता। एक बार मां को कुंभ पर ले गई थी, बिना किसी अते-पते के। बस लेकर चल दी थी···। आपने रेशमी साड़ी में लिपटे हुए मर्दाना हौसले की बात बहुत ठीक कही है···

? : यार ! तुम्हारा सूरज तुम्हारे चन्द्रमा से छठे स्थान पर है। तुमने ज़रूर बड़ी हिम्मत से अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की होगी। यह वीरगाथा आज तुम्हारे मुंह से सुनेंगे !

उ : अरे ! यह बात तो मैंने भी आज तक नहीं सोची थी कि मैं शत्रुओं से हमेशा किस तरह जीत जाती हूं। यह बिलकुल सच है कि मेरी दिलेरी ने मेरे बड़े शत्रु बनाए हैं। सगे-सम्बन्धी भी और आस-पड़ौसी भी। अचानक लोग मेरी मुखालफ़त करने लगते हैं, मेरी बदनामी भी मैं किसी से कुछ नहीं कहती और अचानक एक दिन वही लोग मुझसे माफ़ी मांगने आ जाते हैं। कई घटनायें हैं, पर एक सुनाती हूं। रायबरेली की एक रियासत हुआ करती थी, कोठी नायन। उस रियासत के राजा ने मुझे ज्योतिषी के तौर पर बुलाया हुआ था। मैं राजा की कोठी के मेहमान-घर में ठहरी हुई थी। जिसका दरवाज़ा कोठी की ओर नहीं खुलता था। बाहर वाली सड़क की ओर खुलता था। वहां रात को एक मिल का डायरेक्टर शराब पीकर आ गया। उसके पास पिस्तौल भी था, सो भीतर आकर पिस्तौल के बल पर उसने मुझे डराना चाहा कि मैं उसकी इच्छा पूरी करूं। यह दिखाने के लिए कि पिस्तौल खाली नहीं है, उसने गोलियां निकालकर अपनी हथेली पर रखकर दिखाईं। उस वक़्त मैंने झपट कर वे गोलियां छीन लीं। उस पर उसने मुझे डराया कि वह खाली पिस्तौल मार-मार मुझे बेहोश कर देगा। अमृता जी ! उस वक्त कैसी दिलेरी आई, कहां से आई, नहीं जानती। मैंने उसे गोलियां लौटा दीं और सामने खड़ी हो गई—लो मार डालो पिस्तौल से ! पर तुम्हारी इच्छा पूरी नहीं करूंगी। और वह आदमी मेरे पांवों पर गिर पड़ा···

? : उर्मिल ! तुम्हारा मंगल लाभ स्थान का मालिक भी है, पर साथ ही त्रिक स्थान का मालिक भी। और वह राहू के साथ मिलकर तुम्हारे सुख स्थान पर बैठा हुआ है। सो सुख स्थान पर क्या-क्या गुज़रा ? क्या कुछ मंगल ने किया और क्या कुछ राहू ने ?

उ : सुख स्थान से दो तरह का सुख मिलता है। एक मां बाप से, और मां बाप के पैसे से। दूसरा परिवार में और परिवार के पैसे से। यह सुख मुझे न मोह ममता की सूरत में मिला है, न जमीन-जायदाद की सूरत में।

? : उर्मिल ! तुम्हारे चौथे घर के मंगल ने तुम्हें मंगलीक बना दिया है। क्योंकि

उसकी चौथी दृष्टि तुम्हारे सप्तम पर है। पर सप्तम भाव पर सप्तमेष की भी दृष्टि है, वह भी गुरु जैसे सप्तमेष की। अतः तुम्हारे गृहस्थ जीवन के आंगन में ज़रूर दो नदियां बहती होंगी, एक गर्म खौलते हुए पानी की और एक ठंडे शीतल जल की। दोनों नदियों का स्नान कैसे किया ?

उ : बहुत बढ़िया सवाल है। जहां तक मेरे मंगलीक होने की बात है, मेरे मंगल को काटने वाला, मेरे पति की कुंडली में शनि पड़ा हुआ है। इसलिए मेरे पति की उम्र को खतरा नहीं हुआ और इसी कारण हमारा तलाक़ नहीं हुआ। पर मंगल महाराज का जितना असर रह गया—उससे यह ज़रूर हुआ है कि हम मानसिक तौर पर अलग-अलग हैं। बीच में झगड़ों की बौछार भी हमारे सिरों पर पड़ती रहती है। पर गुरु सप्तमेष है और घर को देख रहा है, इसलिए घर को हंसता-खेलता रखता है। और मैं इसीलिए दोनों नदियों का स्नान करते हुए घबराती नहीं।

? : उर्मिल यार ! एक तुम्हारे जन्म लगन की मिथुन राशि, और एक तुम्हारे चन्द्र लगन की वृष राशि, एक ही दरवाज़े की दो चाबियों जैसी हैं। दरवाज़े के भीतर बैठे हुए तुम्हारे गुणों की तसदीक मिलती है कि तुम्हारे भीतर समझदारी भी है, पवित्रता भी ! हाथ भी ज़रूर सख़्त होंगे। पर साथ ही विलासिता भी झलकती है। यह विलासिता वाली कहानी नहीं सुननी चाहिए, इसलिए खुद ही बताओ !

उ : इसमें कोई शक नहीं कि मिथुन लगन, मैथुन का चिह्न है। मेरी चन्द्र राशि का मालिक भी शुक्र है—भोग विलास का सूचक। यह मेरे स्वभाव का क़ुदरती सच है। मैंने हमेशा आशिकाना मिज़ाज के पुरुष की कल्पना की है। मेरी कल्पना यथार्थ नहीं बनी। पर कल्पना से मुझे इन्कार नहीं। मेरी कल्पना का भोग विलास शारीरिक सम्बन्धों के साथ जुड़ता है। मानसिक सम्बन्धों के साथ जुड़ता है। इसे आप भले ही मानसिक ऐय्याशी कह लीजिए, या कुछ और। पर यह है···

इसका एक और पहलू यह है कि जब कभी और जितनी देर मुझे यह मित्र-साथ मिला है, तब इससे मेरी विद्या का विकास हुआ है। उसने मेरी दृष्टि को खंडित नहीं किया, बल्कि एकाग्र किया है। लोग सोचते हैं कि ऐसे साथ इन्सान को बिखरा देते हैं, पर मेरा तजुर्बा उल्टा है। मैं साथ की प्रेरणा से एक सुर हो जाती हूं. एकाग्र मन···

सात देवताओं को सात सवाल

○ प्यारे देवताओ ! आपको जानने के दावेदार, आपके जिज्ञासुओं को बहुत कुछ बताते हैं, पर किसी जिज्ञासु को प्रश्न करने का अधिकार नहीं देते। पर प्रश्न जिज्ञासा का सहज रूप होता है, जिज्ञासा का गुण, अवगुण नहीं। इसलिए जो भी प्रश्न मन में आए हैं, वह मेरी जिज्ञासा का सहज कर्म हैं।

○ सबसे पहला सवाल यह पूछना चाहती हूं कि आपके देव-गुणों को जानने के दावेदारों ने आप में से—चन्द्रमा, बुध, शुक्र और बृहस्पति को पुण्य ग्रह कहा है, पर सूर्य, मंगल और शनि को पाप ग्रह। क्या देवता भी पुण्य-पाप की श्रेणी में बांटे जा सकते हैं ?

○ लोग कहते हैं—पाप उच्च के भी होते हैं, नीच के भी। जैसे सूर्य मेष राशि में हो तो उच्च का, तुला राशि में हो तो नीच का। चन्द्र वृष राशि में हो तो उच्च का वृश्चिक राशि में हो तो नीच का। मंगल मकर में हो तो उच्च का, कर्क में हो तो नीच का। बुध कन्या में उच्च का, मीन में नीच का। और बृहस्पति कर्क में उच्च का, मकर में नीच का। शुक्र मीन में उच्च का, कन्या में नीच का। और शनि यदि तुला राशि में हो तो उच्च का, यदि मेष में हो तो नीच का। सच मानिए ! जिन्हें देवता मान लिया, फिर उन्हें नीच का नहीं सोचा जाता। आप बताइए, मैं आपको खास-खास स्थानों पर देखकर नीच के कैसे सोचूं ?

○ सूर्य देवता ! लोग कहते हैं कि चन्द्र, बृहस्पति, बुध और मंगल तुम्हारे मित्र देवता हैं, पर शनि और शुक्र तुम्हारे शत्रु। चन्द्र देवता ! सूर्य, बुध, शुक्र और बृहस्पति तुम्हारे मित्र कहलाते हैं, पर शनि और मंगल तुम्हारे वैरी। मंगल देवता ! सूर्य, बृहस्पति और चन्द्र तुम्हारे दोस्त हैं और बाकी सब देवता तुम्हारे दुश्मन। बुध देवता ! लोग कहते हैं—सिर्फ सूर्य, बृहस्पति और चन्द्रमा के साथ तुम्हारी बनती है; पर शनि और मंगल के साथ हमेशा अनबन रहती है। बृहस्पति देवता ! सूर्य, बुध, मंगल और चन्द्रमा के साथ तुम्हारी दोस्ती है, पर शनि और शुक्र के साथ तुम्हारी जानी दुश्मनी है। और शुक्र देवता ! तुम्हें भी सिर्फ शनि, बुध और चन्द्रमा अच्छे लगते हैं, सूर्य, मंगल और बृहस्पति तुम्हें रास नहीं आते। और शनि देवता ! तुम्हारे सिर्फ़ दो मित्र हैं —शुक्र और

बुध, बाकी सारे देवता तुम्हारे दुश्मन। मैं बहुत परेशान हूं—क्या देवता भी देवताओं के दुश्मन हो सकते हैं ?

○ और इसी से सम्बन्धित एक और सवाल है कि आप देवताओं को, दूसरे कई देवताओं के साथ मिलकर किसी इन्सान की कुंडली के एक ग्रह में बैठना सिर्फ़ नागवार नहीं, उसकी दृष्टि भी गवारा नहीं होती। उस वक़्त आप अपनी-अपनी शख़्सियत का कर्म भुलाकर, इन्सान को अपने अस्तित्व का शुभ फल देने की जगह, अशुभ फल देने लगते हैं। उस वक़्त आपको अपनी शख़्सियत के कर्म में और स्वयं में विश्वास क्यों नहीं रहता ? और कहीं दूर बैठे हुए अपने किसी समकालीन की नज़र आपको इस तरह परेशान क्यों कर जाती है ?

और साथ ही यह बात कि आप अपार शक्तियों के मालिक देवता, स्थान, काल और दूसरे की दृष्टि से कोई शक्ति उधार क्यों लेते हैं ? जैसे आप मित्र-ग्रही हों या कुंडली के त्रिकोण में हों, तो स्थान-बली हो जाते हैं। इन्सान रात में पैदा हुआ हो तो चन्द्र, शनि और मंगल काल-बली हो जाते हैं और यदि इन्सान दिन में पैदा हुआ हो, तो सूर्य, बुध और शुक्र काल-बली बन जाते हैं। आपको मित्रों की नज़र मिलती रहे तो आप दृग-बली कहलाते हैं और ख़ास-ख़ास राशियों में, ख़ास-ख़ास देवताओं के साथ मिलकर बैठें तो चेष्टा-बली हो जाते हैं। हैरान हूं—क्या देवताओं को भी—स्थान, काल और दूसरे की नज़र से बल लेना पड़ता है ?

○ लोग कहते हैं साधारण इन्सान की कुंडली के बाहर घरों में, जो-जो राशियां होती हैं, आपका उनमें कदम रखना, वहां की राशि के अनुसार फल देता है। पर सोचती हूं—असर तो राशि पर आपके कदम का होना चाहिए था, यह राशि का असर आपके कदम पर कैसे हो गया ? राम के पांव की छुअन से कोई पत्थर बन चुकी अहिल्या जी उठती है, पत्थर हुई अहिल्या की छुअन से राम का पैर पत्थर नहीं हो जाता। यह देवता— पैर के स्पर्श का कर्म किस तरह बदल गया ? मुझे बताना ! बहुत परेशान हूं।

○ एक सवाल और—मान लिया कि आपने अपने सुख-आसन के लिए अलग-अलग स्थान चुने हुए हैं। आप अपने-अपने स्थान के मालिक कहलाते हैं। जैसे मेष और वृश्चिक राशि का मालिक मंगल होता है। वृष और तुला राशि का मालिक शुक्र। मिथुन और कन्या राशि का मालिक बुध। कर्क राशि का मालिक चन्द्र और सिंह राशि का सूर्य। इसी तरह धन राशि और मीन राशि का मालिक बृहस्पति और मकर और कुंभ का मालिक शनि। यानी—किसी की कुंडली के पहले और आठवें घर का मालिक मंगल, दूसरे और सातवें का मालिक शुक्र, तीसरे और छठे का मालिक बुध, चौथे का चन्द्र; पांचवें का सूर्य, नौवें और बारहवें घर का मालिक बृहस्पति और दसवें तथा ग्यारहवें घर का मालिक शनि।

सुना है—जब आप स्वामी होकर अपनी राशि में बैठते हैं, तब उस ग्रह को शुभ फल देते हैं। पर जब आप अपने-अपने सुख-आसन पर बैठने की जगह, किसी और के घर में बैठते हैं तो उस ग्रह को नुकसान पहुंचाते हैं। खास कर आप छठे, आठवें और

बारहवें आसन के स्वामी, जहां भी किसी और के घर में बैठे हों, उस घर को नष्ट कर देते हैं। किसी ग़ैर के घर मेहमान बनकर साधारण इन्सान भी उस घर का बुरा नहीं सोचता, पर आप देवता होकर, अपने मेज़बान घर का बुरा कैसे सोच जाते हैं? आप मित्र-ग्रही और शत्रु-ग्रही कैसे हो जाते हैं?

माफ़ करना! यह सवाल ज़रा लम्बा हो गया है, पर मन में आया हुआ मन में नहीं रहना चाहिए।

सूर्य देवता! तुम्हारे गुण अपार हैं, तुम तेजस्वी, इन्सान की इच्छा शक्ति के देवता, अगर इन्सान की कुंडली के पहले ग्रह में होते हो तो वह स्वाभिमानी इन्सान अच्छे कद-बुत का और ऊंचे मस्तक वाला होता है। तुम्हारा प्रभाव हर ग्रह में अलग-अलग होता है, मैं सारे ग्रहों का विवरण नहीं देती, पर पूछती हूं कि अगर तुम कुंडली के आठवें घर में होते हो तो तुम्हारा कर्म कहर क्यों बन जाता है?—उस इन्सान का तन भी बीमार रहता है और मन भी। उसकी मेहनत की कमाई चोरों के हवाले क्यों हो जाती है?

चन्द्र देवता! इन्सान की कल्पना शक्ति के देवता। तुम जिसकी कुंडली के लगन में होते हो, कहते हैं, तुम उसे हुस्न भी देते हो और हुनर भी। तुम चौथे घर में होते हो तो उस इन्सान को ख़ास तौर पर प्रेमिका-सुख मिलता है। तुम जिसकी कुंडली के नौवें ग्रह में होते हो उसे विरोधी समाज भी आदर और मान देता है। पर यदि तुम किसी की कुंडली के बारहवें घर में आ जाओ, तो वह इन्सान सारी उम्र दुश्मनों से कांपता रहता है, उसकी आंखों की नज़र कम हो जाती है और जिसने उसे कोख से जन्म दिया था, वह मां भी उसकी मित्र नहीं रहती। तुम सोलह कला सम्पूर्ण, देवता यह तुम्हारी सतारहवीं कला कैसी है?

मंगल देवता! तुम्हें आत्म-विश्वास का देवता कहते हैं। पर तुम जिसके लगन में बैठ जाते हो, उसके सभी काम अधूरे रह जाते हैं। वह सदा लोहे और आग से भयभीत रहता है। तुम दसवें घर में बैठकर इन्सान को कुल का दीपक बना देते हो, उसे काव्य शक्ति देते हो, शोहरत देते हो, पर बाकी घरों में तुम किस प्रकार के श्राप बांटते हो कि दूसरे घर के मंगल वाला सदा ज़िन्दगी में हारता, तीसरे घर के मंगल वाला सदा बीमार रहता, और के चौथे मंगल वाले को मां का सुख नसीब नहीं होता, पांचवें घर के मंगल वाला अपनी संतान की मौत देखता है और सातवें घर के मंगल वाले को अपनी औरत की मौत देखनी पड़ती है।

आत्मविश्वास के देवता! तुम अपने इन्सान को किस तरह का आत्म देते हो और किस तरह का विश्वास?

रूहानी शक्ति के देवता बुध! तुम जिसके लगन में बैठते हो, उसे अच्छा दिल देते हो, लम्बी उम्र देते हो और साथ ही इल्म, इख़लाक देते हो, पर तुम जिसके छठे ग्रह में बैठते हो, उसे लंपट कामुक भी बना देते हो, झगड़ालू भी।

हे बृहस्पति देवता! धर्म, कानून, प्रेम और शक्ति के देवता! तुम जिसके लगन

में होते हो, वह इन्सान सुन्दर, सुखी और अच्छी आत्मा होती है। पर यह कैसे हो गया, कि तुम जिसके तीसरे ग्रह में हो, वह इन्सान नीच स्वभाव का हो जाए? और तुम जिसके छठे ग्रह में हो वह सदा रोगी रहे?

शुक्र देवता! तुम निश्छल प्रेम और बुद्धि तथा काबलियत के देवता! तुम जिसके लगन में होते हो उस इन्सान का अंग-अंग सुन्दर होता है। साथ ही वह विद्वान होता है और ऊंचे काम करता है, पर तुम जिसके छठे ग्रह में होते हो उसे न पिता का सुख मिलता है न स्त्री का। इसी तरह नौवें ग्रह के शुक्र वाला बहुत अमीर होता है, बहुत गुणवान, पर दसवें ग्रह के शुक्र वाला लोभी भी हो जाता है और विलासी भी। यह तुम्हारी शख्सियत कैसी दोहरी शख्सियत है?

और शनि देवता! तुम ज्ञान, धीरज, दृढ़ता, गंभीरता और सामर्थ्य के स्वामी हो, पर तुम जिसके लगन में बैठते हो, लोग कहते हैं कि वह इन्सान धन-दौलत वाला होकर भी मंद दृष्टि वाला होता है। तुम दूसरे ग्रह में बैठते हो तो इन्सान सोने-चांदी के ढेर लगाकर भी मानसिक शांति प्राप्त नहीं कर सकता। तुम जिसकी कुंडली के तीसरे ग्रह में होते हो वह इन्सान बौद्धिक होकर भी हर तरह के विघ्नों से ग्रस्त रहता है। तुम जिसके चौथे ग्रह में होते हो उस बदनसीब को पिता से भी कुछ नहीं मिलता और सगे सम्बन्धियों से भी सिर्फ़ दुःख मिलता है। तुम जिसके पांचवें ग्रह में होते हो वह विद्वान होकर भी सन्तान का सुख नहीं देख सकता। तुम जिसके छठे ग्रह में होते हो, वह दुश्मनों को मात देकर भी बीमारियों में घिरा रहता है। तुम जिसके सातवें घर में होते हो, उसका धन स्थायी होता है, पर वह नीच ख़्यालों का हो जाता है। तुम जिसके आठवें घर में होते हो वह छोटे दिल का, चालाक और बुरे विचारों वाला हो जाता है। तुम जिसके नौवें घर में होते हो वह या तो कठोर कर्म करता है या घर-बार त्याग कर संन्यासी बन जाता है। तुम जिसके दसवें घर में होते हो वह नेता या किसी ऊंचे पद का स्वामी बनकर बहुत अभिमानी हो जाता है। तुम जिसके ग्यारहवें घर में होते हो वह कारीगर भी होता है, कलाकार भी, पर छोटी उम्र में ही अनाथ हो जाता है और तुम जिसके बारहवें घर में होते हो, वह बदबख़्त सिर्फ़ दुःखों का होकर रह जाता है। शनि देवता! तुम अनेक गुणों के स्वामी, इन्सान को गुण बांटते-बांटते यह अवगुण कैसे बांट देते हो? और धन दौलत देकर भी तुम यह बदनसीबियां उसके माथे पर कैसे लिख देते हो?

○ और सातवां—एक आख़िरी सवाल, पर संक्षिप्त सा, कि तुम सब अपार शक्तियों के मालिक, धन-दौलत के स्वामी, जब रौ में नहीं होते, तो साधारण इन्सान तुम्हारे नाम पर छोटे बड़े नग-मोती पहनकर तुम्हें कैसे खुश कर लेता है? जैसे सूर्य देवता! कोई भी आदमी सोने या तांबे में माणिक जड़वाकर अपनी उंगली में डाल ले, तो तुम राज़ी। चन्द्र देवता! कोई चांदी की तार में मोती लपेटकर पहन ले तो तुम मेहरबान। बुध देवता! तुम्हारा मोह पन्ने से और बृहस्पति देवता तुम्हारा मोह पुखराज से। शुक्र देवता! तुम्हें हीरों का शौक और शनि देवता! तुम्हें नीलम प्यारा लगता है।

हैरान हूं—क्या इतने तेजस्वी और शक्तिशाली देवताओं को भी अदना इन्सानों की थोड़ी-सी पूजा-अर्चना और मिन्नत मोहताजी की आवश्यकता होती है ?-

ख्याल आता है-—शायद इन्सान ने अपने चिंतन की तरह तुम्हारा चिंतन भी निश्चित कर लिया है और अपने स्वभाव की तरह तुम्हारा स्वभाव भी कल्पित कर लिया और शायद तुम्हारी शख्सियत की कल्पना कर सकना इन्सान के सामर्थ्य में नहीं। पर तुम मुझे किसी भी तरह के अनुमानों के हवाले न करो, अपने अक्षरों में अपनी पहचान दो !

समय के सात सवाल--हम सबसे

दोस्तो ! प्रश्नकर्त्ता सिर्फ़ वर्तमान होता है, क्योंकि वही मेरा पूर्ण—मैं होता है। पूर्ण-मैं के अर्थ हैं समय की चेतनता और चेतनता प्रश्न-कर्त्ता होती है।

प्रश्न-कर्त्ता चुप रहे तो चेतनता की मौत होती है, उत्तरदाता चुप रहे तो उसकी मौत।

मिसाल सामने है—मैं जब पांडव-काल का वर्तमान था, तो वन-वन घूम रहे पांडवों को जब अति की प्यास लगी, तो नकुल ने अथाह पानी का स्रोत खोज लिया था। मैं पानी की आत्मा था, इसलिए मैंने नकुल से कुछ प्रश्न किए थे, कहा था—हे नकुल, मेरे प्रश्न का उत्तर दिये बिना पानी को मुंह से न लगाना, नहीं तो···पर नकुल का 'मैं' सिर्फ़ उसकी प्यास से संबंधित था, निजी प्यास से, पानी की आत्मा से नहीं। सवाल समय की प्यास का था, पानी की आत्मा का। नकुल चुप रहा और निजी प्यास को बुझाने के लिए जब उसने पानी पिया, वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा···

नकुल की तरह, भीम, अर्जुन और सहदेव का मन भी निजी प्यास की पूर्ति से जुड़ा हुआ था। पानी की तलाश उन्होंने भी निजी प्यास की पूर्ति के लिए की थी, इस-लिए पानी की आत्मा का सवाल उन्होंने नहीं सुना और नकुल की तरह वह भी तीनों अथाह निर्मल पानी के किनारे पर मूर्च्छित होकर गिर पड़े···

पानी की आत्मा का हर सवाल युधिष्ठिर ने सुना था और हर सवाल का जवाब उसने अपने चिन्तन में से और कर्म में से पाया था। यह भी—कि सूरज इन्सान के इख़लाक़ में सम्मानित होता है और बद-इख़लाक़ी में अपमानित।

और अब जब आप ग़ुलामी के जंगल में भटकते, ज़िल्लत का कंद मूल खाते, अपने ज़ख़्मी पैरों से स्वतंत्रता की दिशा खोजते, 1947 में, पंद्रह अगस्त को, रात के दूसरे पहर स्वतंत्रता के दरवाज़े तक पहुंच गए, तो मैं स्वतंत्रता की आत्मा था। इसलिए मैं प्रश्न-कर्त्ता था। कहा था—मेरे प्रश्नों का उत्तर दिये बिना स्वतन्त्रता के दरवाज़े में पैर मत रखना, नहीं तो···

आप ज़िंदगी की तलाश में, स्वतंत्रता के दरवाज़े से गुज़र कर भी उसी तरह भटक रहे हैं, जैसे कई साल पहले ग़ुलामी के जंगल में भटक रहे थे···

सवाल हवा में खड़े हैं—

1. स्वतंत्रता लफ़्ज़ का ज्ञाता कौन है ?
2. स्वतंत्रता का अधिकारी कौन होता है ?
3. क्या सत्ता आत्म-शक्ति होती है ?
4. क्या सत्ता और स्वतंत्रता का कोई आत्मिक संबंध होता है ?
5. क्या स्वतंत्रता भिक्षा की तरह ली या दी जा सकती है ?
6. क्या स्वतंत्रता छीनी या लूटी जा सकती है ?
7. क्या आचरण-शक्ति बिना स्वतंत्रता धारण की जा सकती है ?

दोस्तो ! पांच पांडव—आप सबकी पांच इंद्रियां हैं। अगर नकुल, भीम, अर्जुन और सहदेव आपके अंदर हैं, तो यक़ीन करें कि युधिष्ठिर भी आपके अंदर है—जिसने अपने वर्तमान की आवाज़ को सुनना है, और इन सवालों के जवाब अपने चिन्तन में से और अपने कर्म में से खोजने हैं। नहीं तो···

—अमृता प्रीतम

□□